सुभद्रा खुराना

सुभद्रा खुराना

पन्ना

प्रस्तुत खंड-काव्य 'पन्ना' धाय इतिहास के मरु प्रदेश में कर्त्तव्य का बहता जल—सोता एवं खारे मरु—समुद्र में ऋतंभरा कलश-दीप है। 'पन्ना' खंड-काव्य की ध्वनि आज की नारी-मानसिकता के लिए एक चेतन संकेत है। यदि बलिदान की शक्ति उसमें न होती तो आज वह जलायी नहीं जाती, प्रेम में असफल होकर वह आत्महत्या न करती। पन्ना ने बलिदान व्यक्ति के सुख के लिए नहीं किया, अपितु राष्ट्र की संपत्ति की सुरक्षा को अपना कर्त्तव्य समझकर किया। उसने भावना का बलिदान कर दिया और कर्त्तव्य को सर्वोपरि माना।

नागार्जुन के शब्दों में—

"'पन्ना' काव्य एक अद्‌भुत कोटि का सफल काव्य है। इसका कथानक तो इतिहास में विख्यात है। सुभद्रा जी के स्पर्श से 'पन्ना' की चमक और भी बढ़ गयी है। छंद का अकाल है आजकल। ऐसे में रचयित्री की अभिव्यंजना विलक्षण है। भविष्य में सुभद्रा जी प्रबंध-काव्य की भी रचना करेंगी, हमें पूर्ण विश्वास है।"

सीताराम चतुर्वेदी का इस खंड-काव्य के बारे में मत इस प्रकार है—

"ऐसे उदात्त चरित्र की वीरगाथा का वर्णन करने के लिए जिस कवि कौशल की अपेक्षा होती है उसका पूर्ण निर्वाह करते हुए सुकवयित्री सुभद्रा खुराना ने पन्ना धाय का कीर्तिशाली चरित्र अंकित करने में कोई कमी नहीं छोड़ी। समुचित छंदों में, भावपूर्ण शैली में ऐसी प्रशस्त भावप्रवणता के साथ संवलित किया है कि उसे पढ़कर कोई भी सहृदय पाठक उससे अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकता।"

'पन्ना' धाय का त्याग और बलिदान हमारे देश के इतिहास के उन प्रसंगों में से एक है जो अपनी प्रेरणाशक्ति में कभी फीका नहीं पड़ सकेगा। पन्ना के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को केंद्र में रखकर लिखा गया यह काव्य अपनी वर्णनात्मक शैली और बीच-बीच में प्रकृति एवं जीवन के बिंबों के चित्रण के कारण इतिहास और कविता के प्रेमियों को आनंद प्रदान करेगा, यह आशा है।

ISBN 81-85478-58-9

मूल्य : 80.00

13

माननीय प्रो० स्वतन्त्र कुमार जी
कुलपति गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
को

सादर -

[signature]
25-5-03

पन्ना

[खंड-काव्य]

पन्ना

सुभद्रा खुराना

प्रकाशक
ज्ञान भारती
4/14, रूप नगर
दिल्ली-110007

प्रथम संस्करण
2000

• मूल्य : 80.00

मुद्रक
अरोड़ा आफसेट प्रैस
लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092

ISBN 81-85478-58-9

ज्वलंत प्रेरणादायक तथ्य

महाकवि कविताकामिनीकांत कविकुल-गुरु कालिदास ने अपने सुप्रथित महाकाव्य रघुवंश के प्रारंभ में उस महाकाव्य की रचना का कारण बताते हुए लिखा है कि रघुवंश के प्रतापी और पुण्यचरित महापुरुषों के गुणों ने मुझे ऐसा प्रभावित किया कि मैं रघुवंश काव्य लिखने की चपलता करने बैठ गया। कवि का लक्षण ही यह है कि वह अपने इतिहास और समाज के ज्वलंत पृष्ठ उखाड़कर उसमें अंकित महापुरुषों के उदात्त चरित्रों से भावित होकर अपने शब्दों में अपनी भावना के साथ उनकी पुण्य गाथा लिखने को मचल उठे।

राजस्थान की वीर-भूमि समस्त विश्व के लिए वंदनीय भूमि रही है, जहां के शूरवीरों ने, वीरांगनाओं ने, वीर माताओं ने अपनी आन, अपने धर्म और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अथवा अपने स्वामी की रक्षा के लिए अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करते हुए अपने प्राण और अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। राजस्थान के इतिहास में दस-बीस नहीं, सौ-दो सौ नहीं, वरन् सहस्रों त्याग, उत्सर्ग और बलिदानों की ऐसी-ऐसी मार्मिक कथाएँ भरी पड़ी हैं कि उन्हें पढ़ और सुनकर कायर के हृदय में भी जूझ पड़ने का संकल्प उमड़ पड़ता है।

पन्ना धात्री (पन्ना धाय या पन्ना दाई) के बलिदान की कथा मर्मस्पर्शिणी और करुण होने के साथ-साथ इतनी तेजस्वितापूर्ण और उत्तेजक है कि उस देवी के आत्मबलिदान के सम्मुख बरबस नत-मस्तक होना पड़ता है। हाथ में तलवार लेकर लड़ते हुए अपने देश या स्वामी के लिए प्राण दे डालना उतना लोमहर्षक नहीं होता जितना अपनी आंखों के सामने अपने पुत्र को एक क्रूर और हिंसक पुरुष का आखेट होते देखना होता है। धात्री या धाय को माता के समान माना जाता है और आदर दिया जाता है और धात्री भी अपने पोष्य पुत्र को भी अपने औरस पुत्र के समान ही मानती और उसकी रक्षा करती है, किंतु जब उसके औरस पुत्र और पोष्य पुत्र के बीच संकट के समय यह चुनना होता है कि इनमें से किसकी रक्षा पहले की जाये तब सामान्य माता का सारा स्नेह अपने सगे पुत्र की ओर उमड़ पड़ता है और पहले उसी की रक्षा के लिए दत्तचित्त होती है, किंतु पन्ना के लिए बालक उदयसिंह केवल पोष्य राजकुमार ही नहीं था वह स्वामी भी था, मेवाड़ का भावी शासक, जिसकी सब प्रकार से रक्षा करना परम धर्म हो गया था और इसी सेवा-धर्म से प्रेरित होकर उस वीर महिला ने अपनी आंखों के सामने बनवीर के हाथों अपने सगे पुत्र

की निर्मम हत्या होते देखकर भी अपनी आंखों के आंसुओं को अपने भीतर ही रोके रखा और अपने पोष्य तथा मेवाड़ के भावी राजा उदयसिंह की रक्षा के लिए अपने पुत्र का बलिदान कर दिया। यह पुराण नहीं है, आख्यायिका भी नहीं है, यह ज्वलंत प्रेरणादायक तथ्य शुद्ध इतिहास है। हमारे देश की वीरता का गौरवशाली इतिहास है, त्याग, उत्सर्ग और बलिदान का इतिहास है। क्या कोई माता इतनी उदात्त उच्चता तक पहुंच सकती है ? इस घटना से संपूर्ण मनोविज्ञान की समस्त मान्यताएं धूल में मिल जाती हैं। यह स्वाभाविक-मानसिक स्थिति सामान्य माताओं में अवश्य होती ही है, किंतु असामान्य, कर्त्तव्यशील वीर माताएं इस सामान्य स्थिति के अपवाद हैं। यह वही उदात्त मानसिक स्थिति है जिसकी प्रेरणा से लक्ष्मण की माता सुमित्रा ने बिना किसी हिचकिचाहट के निश्चिंत होकर लक्ष्मण को कह दिया था, "बेटा, वन को ही अयोध्या समझना, राम को पिता समझना, सीता को सुमित्रा समझना। तुम राम के साथ अवश्य वन चले जाओ।" तुलसीदासजी ने सुमित्रा के वचनों में वाल्मीकि के वर्णन से एक पंक्ति और आगे बढ़ा दी है—"अवध तुम्हार काज कुछ नाहीं", "अयोध्या में तुम्हारे रहने का कोई काम नहीं है।" दिव्य वीर माताओं की इसी श्लाघनीय परंपरा में पन्ना धाय भी है।

ऐसे उदात्त चरित्र की वीरगाथा का वर्णन करने के लिए जिस कवि-कौशल की अपेक्षा होती है उसका पूर्ण निर्वाह करते हुए सुकवयित्री श्रीमती सुभद्रा खुराना ने पन्ना धाय का कीर्तिशाली चरित्र अंकित करने में कोई कमी नहीं छोड़ी। समुचित छंदों में, भावपूर्ण शैली में ऐसी प्रशस्त भावप्रवणता के साथ संवलित किया है कि उसे पढ़कर कोई भी सहृदय पाठक उससे अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकता। इस वीर काव्य से पूर्व उन्होंने परम श्रद्धास्पद गुरुगोविन्द सिंह जी की प्रशस्ति में जो महाकाव्य लिखा है वही ओज. इस खंड काव्य में भी आद्योपांत विद्यमान है। मैं इस काव्य की टंकित पांडुलिपि आदि से अंत तक पढ़ गया और मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि श्रीमती सुभद्रा खुराना ने पन्ना धाय की वीरगाथा को अत्यंत सशक्त रूप से अभिव्यक्त किया है। मैं हृदय से उन्हें आशीर्वाद देता हूं कि उनका काव्यपथ मंगलमय हो और निरंतर आलोकित होता हुआ हिंदी साहित्यश्री का अभिवर्ध्य करता रहे। मुझे विश्वास है कि हिंदी साहित्य जगत् उनके इस काव्य का समुचित स्वागत करेगा।

मुजफ्फरनगर

—सीताराम चतुर्वेदी

मानवीय मानस हंस की संवेदनशील अभिव्यक्ति

जिसने आंसुओं के साथ रोटी नहीं खायी, वह जिंदगी का स्वाद नहीं जानता।

रचना क्या है ? अपने ही द्वारा कुरेदे गये दर्द को, सहलाने की एक मीठी प्रक्रिया।

और लिखना क्या है ? अपने आप को दुखी करने का, एक सुखद एहसास।

व्यथा में से ही काव्य का जन्म होता है। कहीं पर्वत का दर्द, झरने के रूप में झरता है, तो कहीं धरती के आंसू नदी के रूप में बहने लगते हैं। कहीं व्याध के वाणी से बिंधे क्रौंच पक्षी की व्यथा, वाल्मीकि के द्वारा रामायण की सृष्टि करा जाती है, तो कहीं मिलन के क्षणों में रावण के बाण से बिंधकर राम-सीता की व्यथा तुलसी की रामायण बनकर जन-मन में प्रवहमान हो उठती है।

कविता क्या है ? मनोलोक का संगीत। जिस तरह बिना मन के गाया नहीं जा सकता, उसी तरह बिना मन के कविता नहीं की जा सकती। कविता तो मनोभावनाओं के जल में बनने वाला प्रतिबिंब है। यदि जल स्थिर रहे, तो चित्र बनता है अन्यथा एक लकीर दूसरे को काटते चलती है।

काव्य की उत्पत्ति भी मन से होती है। मन ही वह सरोवर है, जिसमें से सरस्वती का जन्म होता है। लेकिन हरेक के मन में उठने वाली बात, कविता नहीं होती। मनुष्य का मन, जब समष्टि के दुख-दर्द, हास-उल्लास से आत्मसात होकर उसे वाणी प्रदान करता है, तभी वह काव्य कहलाता है। इसी समष्टिगत मन की अभिव्यक्ति को अवतरित होने के लिए वाहन चाहिए, मनुष्य का मन ही वह हंस है, जिसके माध्यम से काव्य की सरस्वती अवतरित होती आयी है।

काव्य में शब्द पाषाण की अहिल्या बन कर नहीं आते, वरन् कवि की प्रतिभा का स्पर्श पाकर निर्जीव शिलाखंड भी अहिल्या की तरह जागकर अपनी कथा सुनाने लगते हैं। काव्य में 'शब्द' अंगूठी में जड़े 'नग' की तरह प्रवाह के बीच बाधा बनकर नहीं बैठते, वरन् भावनाओं का संस्पर्श पाकर, बर्फ की तरह पिघलकर प्रवाह को गति दे जाते हैं। काव्य में खंडित के लिए स्थान नहीं होता। वरन् अच्छा पति पाने

के लिए लड़की के द्वारा नाखून से तराशे गये चावल चढ़ाने की तरह उसमें अछूती उपमाएं और कल्पनाएं संजोई होती हैं। कहते हैं :

"विश्व के आकाश में अंधेरा होता।
यदि मनुष्य के मन में गीत की ज्योत जली न होती।"

श्रीमती सुभद्रा खुराना ने ऐसा संवेदनशील मन पाया है कि उनकी कलम का स्पर्श पाकर कहीं प्यासा बादल नदी किनारे भटकता नजर आता है। कहीं प्यासे तरुवर धरती पर छाये होते हैं। कहीं आकाश में उदित होने वाले तारे, प्यासे ओठों की तरह बुदबुदाने लगते हैं। कारण :

"प्यास न हो तो, कौन पथिक, पथ
प्यास नहीं तो कौन प्रवासी ?
प्यास लगी थी, था दुहराया,
"अक्षर-अक्षर नाम तुम्हारा
दर्द दे दिया चलते-चलते"
का मोहक पैगाम तुम्हारा
"मैं तेरी वंशी हूँ माधव"
कह कर भुवन-भुवन रंग डाले,
तत्पश्चात् संवारू ही क्या—
तृषित रही जब मथुरा-काशी।"

कहीं कहती है :

"प्रीत की पहली किरण हूँ,
गीत की पहली कड़ी।"

और कभी पुकारती है :

"ऐसा भी क्या प्यार तुम्हारा,
तन झुलसे और मन द्रव जाये।"

और इसी द्रवित मन की अनेक धाराएं उनके चारों काव्य-संग्रहों में बिखरी पड़ी हैं। लेकिन वह सर्जक क्या जिसकी कलम में नये युग को मार्ग दर्शन देने की क्षमता न हो। और जो मानवीय मूल्यों की स्थापना न कर सके। गुरु गोविन्दसिंह पर लिखे 'गुरु गोविन्दम' काव्य-संग्रह के बाद 'पन्ना' नामक खंड-काव्य आपकी ऐसी सशक्त रचना है, जो हिंदी साहित्य में अपना अमिट स्थान रखती है।

जहां के कण-कण में एकलिंग की जय गूंजती हो, भारत की उसी वीर भूमि

मेवाड़ की 'पन्ना' दाई की कथा, जिसने मां की ममता को होमकर भारत मां की रक्षा के लिए, अपने नन्हे शिशु चन्दन की बलि देकर, मेवाड़ की आंखों के तारे उदयसिंह नामक बालक के प्राणों की रक्षा की, धाय होकर भी उस पन्ना का नाम मानवीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। उन्होंने मनुष्य की आस्था को पांव टिकाने के लिए सुदृढ़ पृष्ठभूमि प्रदान की, और भौतिकवादी युग में त्याग, तपस्या और बलिदान का मार्ग प्रशस्त किया।

मैं बहन सुभद्रा खुराना के इस खंड-काव्य के प्रति श्रद्धा से अपना प्रणाम निवेदन करता हूं और कामना करता हूं कि उनकी कलम की रसधारा सूखने नहीं पाये।

खंडवा (म. प्र.)

—पदम्श्री रामनारायण उपाध्याय

ऋतंभरा कलश-दीप

इतिहास के पृष्ठों को काव्यात्मक-चाक पर गढ़ना चुनौतीपूर्ण तो है ही जोखिम भरा भी है। इतिहास में धड़कता वर्तमान जब कवि के दृष्टि-पथ में आकर जीवन-समाज को संवारता-खंगालता है तब 'पन्ना' जैसी कृतियां सामने आती हैं। यह कार्य सरल नहीं है, इसके पीछे साहित्य-साधना का धैर्य, पावक-पाचक दृष्टि और औदार्य व्यक्तित्व की शालीन भूमिका होती है। इस दृष्टि से जीवन-जगत को देखना और बात है और उसे सत्य, शिव, सुंदर के अनुकूल बनाने का आदर्श संकल्प शाश्वत मानवीय मूल्यों के प्रतिस्थापन का संघर्ष है। कवयित्री खुराना ने इस असि-धार पर चलते हुए इतिहास और काव्य—दो ध्रुवान्तों को मिलाकर इसी संकल्प की पूर्ति की है।

'पन्ना' धाय इतिहास के भरु प्रदेश में कर्त्तव्य का बहता जल—सोता एवं खारे मरु—समुद्र में ऋतंभरा कलश-दीप है। मध्य युग के जिन इतिहास बिंबों को सुभद्रा खुराना ने अपने इस खंड-काव्य में वाणी दी है वह स्वतंत्रता और उत्सर्ग का पर्याय है। कृति का नामकरण निश्चित ही व्यक्तिपरक है लेकिन उसका कथ्य समूहपरक। ऐतिहासिक परिवेश की प्रासंगिकता में घुली-मिली कथ्य की सामयिकता एक महत्तम आदर्श की स्थापना के ब्याज से कवयित्री के नैतिक मूल्यों और सांस्कृतिक आदर्शों के प्रति निष्ठा को व्यक्त करती है। कथ्य की इस सामयिकता में राजनीतिक छल-छद्म का वर्तमान परिवेश मध्ययुग से अधिक आज के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक उद्‌बोधन की छाया में 'पन्ना' गौरवपूर्ण इतिहास का वाचन नहीं है बल्कि आधुनिक गोश्त-भक्षी वर्तमान क्रुड राजनीति के तलव तेवरों की अनुभव भूमि भी है।

आज के संवेदनहीन भौतिक चाक-चिक्य के बीच कविता द्वारा मानवीय आदर्शों-मूल्यों की रक्षा के लिए सन्नद्ध होना शायद सबसे बड़ा खतरा है। कवयित्री ने इस खतरे को बखूबी उठाया है। 'पन्ना' स्त्री नहीं मेवाड़ की 'मां' है। वह एक सामान्य नारी नहीं प्रजा-अस्तित्व का प्रतीक है। कलेजे में पुत्र-बलिदान का छिद्र लिये विवेक-बुद्धि का अद्‌भुत समन्वय है, त्याग का अनुपम निस्वार्थ आदर्श, ममता की साक्षात मूर्ति, कर्त्तव्यपरायणता का सूर्य, मेवाड़ का जीता-जागता ज्योति-स्तम्भ है।

ऐसे चरित्र को केंद्र में रखकर कवयित्री ने मध्ययुग के इतिहास को एक बार पुनः साकार किया है।

साहित्य में वर्तमान की अनुगूंज होती है क्योंकि यही अनुगूंज साहित्य को चिरस्थायित्व देती है। गूंज का विस्तार सीप में मोती सा ढलकर अनुगूंज रूप में ध्वनि का सौंदर्य बिखेरता है। इसी अनुगूंज के कारण व्यास, कालिदास, तुलसीदास आदि आज भी हमारे संस्कारों में गुंजायमान होकर प्रतिध्वनित हो रहे हैं। ध्वनि-सिद्धांत के इसी सौंदर्य ने आचार्य क्षेमेन्द्र को आकर्षित किया था। 'पन्ना' जैसे खंड-काव्य की ध्वनि आज की नारी-मानसिकता के लिए एक चेतन संकेत है।

मेरे विचार से यह चेतन-संकेत ही इस रचना का प्रमुख उद्देश्य है। कवयित्री आज की नारी को देख रही है। वह इस प्रकार का उदाहरण नहीं बन रही है। उसमें बनने की शक्ति है परंतु वह बन नहीं पा रही। वह सांस्कृतिक धरातल आधुनिकता की विकृत होड़ में खिसक गया है। यदि बलिदान की शक्ति उसमें न होती तो आज वह जलायी नहीं जाती, प्रेम में असफल होकर वह आत्महत्या न करती। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो नारी की बलिदानी शक्ति को पुष्ट करते हैं। इस सारी मानसिकता से यह गुंजित होता है कि उसमें आज भी बलिदान होने की भावना है। इस बलिदान को दिशा-निर्देश चाहिए। बलिदान का अर्थ आत्महत्या या मरना नहीं है। पन्ना ने बलिदान व्यक्ति के सुख के लिए नहीं किया अपितु राष्ट्र की संपत्ति की सुरक्षा को अपना कर्त्तव्य समझकर किया। उसने भावना का बलिदान कर दिया और कर्त्तव्य को सर्वोपरि माना।

आज का वर्तमान कर्त्तव्य को तीसरी आंख से देखता है। वह माता-पिता के कर्त्तव्य की पूर्ति किसी सुविधा का दान देकर कर सकता है। उसकी स्वतंत्रता और स्वच्छंदता में कोई अंतर नहीं है। यदि कोई अंतर मानता है तो वह अस्वीकृत हो जाता है। यदि पिता किसी कारणवश अपनी संतान को इस आधुनिकता की होड़ के लिए अत्यधिक सशक्त नहीं कर सका तो वह पिता से बाप हो जाता है। यह बाप होना या करना उसी असाफल्य का दंड भोगना है। कर्त्तव्य की ऐसी ही या उससे मिलती-जुलती कोई भी अवधारणा हो सकती है। जहां पन्ना के सामने उस राष्ट्रीय कर्त्तव्य को निभाना प्रमुख था वहां बनवीर का कर्त्तव्यबोध यही था कि वह अवसर का लाभ उठाकर स्वयं सिंहासन प्राप्त करे। वह कर्त्तव्य का आदर्श रूप था जो पन्ना का कर्त्तव्य बन कर साकार हुआ और बनवीर वर्तमान का यथार्थ रूप है जो जीवन में इसी प्रकार की उपलब्धि को सार्थक मानता है।

कर्त्तव्य का गुणनफल भी विचित्र है। इन्हीं आंखों से नारी की सुरक्षा पुरुष का प्रथम कर्त्तव्य आधार पर नारी को पिटते देखा, हर दुख झेलते हुए उसे ही अपना स्वामी मानते देखा, पिट कर भी अटूट प्रेम देखा और इन्हीं से नारी को पुरुष के गाल पर चांटा जड़ते देखा। प्रथम-रात्रि को ही पुरुष के खर्राटे भरने पर 'डाईवोर्स'

लेते देखा। दोनों ही अपने-अपने कर्त्तव्यों में जकड़े हैं। इस स्थिति में अब साहित्य का क्या कर्त्तव्य है, यह प्रश्न साधारण नहीं है। इसका उत्तर भी सरल नहीं। एक भाई का बहिन के प्रति जो कर्त्तव्य है उसमें पावनता कितने प्रतिशत है—यह बताने की आवश्यकता नहीं। हमारे 'अज्ञेय' ने तो इस पावनता को स्वीकार नहीं किया। यह कर्त्तव्य मात्र प्राचीन रूढ़ि और मानसिक कुंठा मान लिया गया। मनोविज्ञान के नाम पर क्या कुछ नहीं कहा गया। प्रच्छन्न रूप से सब कर्त्तव्य के क्षेत्र हैं। इस वातावरण में पन्ना का कर्त्तव्य-संकेत मेरी दृष्टि में नारी चेतना की आदर्शगत स्थिति है। आधुनिक युग में नारी को आत्मना बलवती होना चाहिए। राष्ट्रीय सजगता नारी के ही माध्यम से आ सकती है।

'कर्त्तव्य' आत्म-दर्शन की व्यावहारिक स्वीकृति है। समाज में सबका पृथक अस्तित्व होते हुए भी एक मानवीय करुणा का संवेदन-संस्पर्श ऐसा है जो इस पृथकत्व में पार्थक्य अनुभूत नहीं होने देता। कवयित्री का यह दर्शन ही 'पन्ना' के प्रसंग में अत्यंत सामयिक है :

> ''नित्य कुछ भी तो नहीं है, अखिल विश्व अनित्य,
> भूल जाऊँ क्या इसी से, उचित करुणा कृत्य।''

यह विचक्षण नर इसलिए अहंकार के मद में चूर नहीं होता। 'पन्ना' के चारित्रिक व्याख्या-मंडल में इस प्रकार के कवयित्री-भाव-चित्र इसी कर्त्तव्य की ओर प्रेरित करते हैं जिसका आजकल नितांत अभाव है। इसका कारण यह है कि आज का समाज राजनीतिक विज्ञान से ग्रस्त है। विज्ञान ने प्रारंभ में जीवन को ऐसी सुविधाएं दी हैं कि अब विज्ञान दिन पर दिन असुविधा दे रहा है और इसे रोका नहीं जा पा रहा। इसी प्रकार राजनीति से सब दुखी हैं। परंतु राजनीति से मुक्त कोई नहीं। कवयित्री का स्टीक कथन वर्तमान जीवन की व्याख्या मात्र नहीं है, जीवन का एक विद्रूप व्यंग्य है :

> ''योग्य अयोग्य न कुछ राजा हित
> रंगते रंग रंगे आंचल को,
> मृषा सत्य का रूप एक है
> राजनीति कहते हैं छल को।''

वास्तव में आज यही हो रहा है, जब कोई किसी से धोखा करता है तो लोग उसे राजनीति कहते हैं। राजनीति का सुकृत रूप कम देखने में आता है उसका विकृत स्वभाव अधिक चर्चित है। पन्ना के युग में भी यह राजनीति अपनी इसी कुप्रवृति का परिणाम दिखा रही थी। कवयित्री ने उस युग के राजनीतिक मानस को ओझल नहीं होने दिया। यही कृति की आधुनिक प्रासंगिकता है कि उसने अतीत-दर्पण में

वर्तमान के जीवंत-बिंब पूरे सरोकारों के साथ उकेरे हैं। पन्ना अनेक शरण-स्थलों पर गयी पर राजनीतिक लाभ आड़े आ गये। बलिदान की भावना पन्ना में रही पर अनेक प्रसंगों में वह दुर्लभ बन गयी। अतीत—छाया से छनकर वर्तमान का बगुलाता—दर्शन कछुआधर्मी राजनीति के घटाटोप में बदल जाता है। 'आज' को कवयित्री बड़ी सहजता से परिभाषित कर हृदय-बुद्धि के कसे तारों पर टंकार करती है :

"सीधी गति चलने वाले को जग में मूर्ख कहा जाता है।"

आज की कर्त्तव्य-भावना इस मूर्खता को ग्रहण नहीं करना चाहती। वह पन्ना के चरित्र को फैशन के तौर पर वैरी गुड कह सकती है परंतु पन्ना बनने के लिए कठिन मार्ग पर नहीं चल सकती। इसलिए इस खंड-काव्य को पढ़ते समय बार-बार मेरा मन पूछता है कि इसे पढ़कर कौन नारी प्रसन्नता से इसे मन में भरने का प्रयत्न करेगी ? नारी का पश्चिमोन्मुखी विकास पन्ना के खंड-काव्यात्मक चरित्र को अपने ड्राइंग रूम के शेल्फ में सजाने का जोखिम उठा सकता है, इस चरित्र से व्यावहारिक स्तर पर आत्मीयता नहीं रख सकता। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि साहित्यकार इस प्रकार के चरित्रों के माध्यम से समाज को संस्कारित करना छोड़ दे। कैसा भी युग हो साहित्यकार को अपना कर्त्तव्य निभाना ही है। कवयित्री सुभद्रा खुराना ने भी अपनी इस कृति द्वारा साहित्यकार धर्म को निभाया है। समाज इससे कितना और क्या ग्रहण करता है यह उस पर निर्भर है।

साहित्यकार की लेखनी में विशेषकर कवि की लेखनी में 'परमाणु' शक्ति का वास होता है। प्रश्न 'ईमानदारी' का है। रचनाकार यदि 'ईमानदारी' से अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए किन्हीं ऐसे चरित्रों को माध्यम बनाकर आदर्श स्थिति की परिकल्पना को व्यावहारिक जीवन में अपनाने की प्रेरणा देता है तो उसे सराहा जाना चाहिए। यथार्थ के नाम पर मात्र जीवन की कडुवाहटों को परोसना श्रेयस्कर नहीं है। इस प्रकार से वातावरण की निर्मिति आवश्यक है जिससे मजबूर होकर वर्तमान और आने वाली पीढ़ी इतिहास के उन आदर्श पृष्ठों को पलटने को विवश हो जाये जो चरित्र इतिहास को स्वर्णिम क्षणों से आलोकित कर गये। इस दृष्टि से कवयित्री को साधुवाद दिया जाना चाहिए।

सुभद्राजी एक भावपूर्ण कवयित्री ही नहीं इतिहास की मरुभूमि में साहित्य के जलस्रोतों की अन्वेषिका भी हैं। इन्होंने इतिहास के पृष्ठों को पलटा मात्र नहीं है अपितु अपनी कला-चेतना का स्पर्श देकर कहीं उसे 'दधीचि' स्वर दिया है तो कहीं 'गुरुगोविन्दम्' के रूप में अपनी उदात्त परिकल्पना को साहित्यिक गरिमा दी है। कवयित्री की मूलधारा गीतात्मक है, व्यक्तित्व लयधर्मी। इनके लेखन में नारी हृदय की लचक एवं ऋदम् काल भंगिमाओं को इच्छानुसार कसे हुए है। अपनी बात कहने के लिए कवयित्री के पास पर्याप्त भाव-शक्ति है। इनकी शब्द-आकृतियों में 'माडर्न

आर्ट' के उलझे बदरंग रंग नहीं हैं, जीवन के चटख भाव रंग हैं जो यथार्थ के नाम पर जीवन को उलझाते नहीं बल्कि शोख़ रंगों में जीवन के आस्था-रंगों को महकाते चलते हैं। 'अक्षर अक्षर नाम तुम्हारा' से लेकर 'पन्ना' खंड-काव्य तक कवयित्री की काव्य-साधना अनेक पथों से होकर गुजरती है। 'चलते-चलते दर्द' को समेटने वाली सुभद्रा 'वंशी-माधव' बनी 'नदी किनारे प्यासा बादल' बनकर पावस ऋतु सी बरसती है। आस्था-द्वंद्व की इस यात्रा में 'सूर्य निकलने' की घोषणा करते हुए कवयित्री एक निश्चित पथ पर अग्रसर रही है। जीवन के अंधेरों ने उन्हें रोशनी दी है। इन्हीं संघर्ष-जुगनुओं के सहारे वह 'पन्ना' जैसे उदात्त नारी चरित्र को हृदय की लाली दे पायी है। इनकी संपूर्ण रचनाओं में एक खास तरह का गीतात्मक आग्रह है, लयात्मकता की ता-ता थैया, ऋदम् गूंज कचनार सी लचकती है और भावों के इन्द्रधनुष तन जाते हैं। भाषा में विद्यमान प्रवाह कहीं विस्फोटक हो जाता है, कहीं प्रणय सा तरल खग—बोली बोलने लगता है।

जहां तक 'पन्ना' का प्रश्न है, कवयित्री ने इस खंड-काव्य में भाव, भाषा और छंद का अत्यंत सतर्कता और स्वाभाविकता से निर्वाह किया है। संस्कृतनिष्ठ भाषा का कहीं-कहीं रंग है। आजकल के काव्य में कुत्र, मम जैसे शब्द नहीं चल पाते। छायावाद तक इनके संग्रह में कोई बाध्यता नहीं थी। आज भाषा का यह रूप नहीं है। इस स्थिति में भी डॉ. सभद्रा खुराना ने अपने अध्ययन और अभ्यास का परिचय दिया है। प्रकृति के संकेत भी आलंकारिक प्रयोगाधीन हैं। वर्णन में सहजता, आकर्षण और प्रवाह है। इस प्रकार के वर्णनों में गांभीर्य अथवा दार्शनिक गहनता की अपेक्षा नहीं होती। डॉ. रामकुमार वर्मा का एकांकी 'दीपदान' स्मृति-पट पर दस्तक दे रहा है। नाटक के संवाद अधिक प्रभावशाली होते हैं परंतु काव्य में इन संवादों की शैली बदल जाती है। जहां-जहां संभव हुआ है वहां कवयित्री ने उसका उपयोग किया है। ऐतिहासिक खंड-काव्यों की परंपरा में डॉ. सुभद्रा खुराना का यह खंड-काव्य एक सशक्त कड़ी है, जिसकी निश्चित चर्चा होगी—ऐसा मेरा विश्वास है।

दिल्ली

—*डॉ. सुरेश गौतम*

इतिहास के अरण्य में काव्य-प्रतिभा का विचरण

रचनात्मक प्रतिभा अदृश्य भविष्य में अनंत संभावनाएं खोजने की क्षमता रखती है तो विगत अस्पष्ट घटनाओं को कल्पना के रंग में रंगकर सरस बनाने की योग्यता भी उसमें होती है। इतिहास से प्रेरणा लेकर, युग-सत्य की अभिव्यक्ति और युग-युग के सत्य को देखने की अन्तर्दृष्टि के प्रमाण किसी भी भाषा के साहित्य में खोजे जा सकते हैं। सशक्त रचनाकार इतिहास के कंकाल में प्राणों का संचार करते रहे हैं। इतिहास यदि तथ्यों का यथावत् विवरण है तो ऐतिहासिक रचना तथ्यों के भीतर झांकते शाश्वत सत्य की सरस अभिव्यक्ति है। अपने कथ्य को विश्वसनीय आधार देने के लिए रचनाकारों द्वारा इतिहास का उपयोग कर पाना उतना सरल नहीं है जितना लगता है। रचनाकार को यह अधिकार नहीं होता कि वह ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़-मरोड़ दे लेकिन रिक्तताओं को भरने के लिए कल्पना का संतुलित उपयोग करने का उसका अधिकार सुरक्षित है। कल्पना का यह उपयोग रचनाकार नये पात्रों का सृजन या घटनाओं का निर्माण करने में करता है। उसे एक ओर इतिहास की रक्षा करनी होती है तो दूसरी ओर रचनात्मक सौंदर्य की अभिव्यक्ति का दायित्व भी निभाना होता है। इस दुहरे दायित्व के कारण ही मैं यह मानता हूं कि अन्य रचना की अपेक्षा ऐतिहासिक रचना का कार्य कहीं अधिक कठिन है और वह कहीं अधिक संतुलित मेधा की अपेक्षा रखता है।

'पन्ना' धाय का त्याग और बलिदान हमारे देश के इतिहास के उन प्रसंगों में से एक है जो अपनी प्रेरणाशक्ति में कभी फीका नहीं पड़ सकेगा। कवयित्री सुभद्रा खुराना ने अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों की गीतात्मक अभिव्यक्ति के कई संकलनों के बाद, कई प्रबंधकाव्यों की भी रचना की है और इतिहास के अरण्य में अपनी काव्य-प्रतिभा को विचरने का अवकाश दिया है। पन्ना के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को केंद्र में रखकर लिखा गया यह काव्य अपनी वर्णनात्मक शैली और बीच-बीच में प्रकृति एवं जीवन के बिंबों के चित्रण के कारण इतिहास और कविता के प्रेमियों को आनंद प्रदान करेगा, यह आशा है। शुभकामना है कि सुभद्रा खुराना कथ्य और शिल्प की साधना में निरंतर आगे बढ़े और कीर्ति की ऊंचाइयों को स्पर्श करने में समर्थ हो।

सहारनपुर

–डॉ. सुरेशचन्द त्यागी

सार्वभौमिक सत्यों की कलात्मक अभिव्यक्ति

'गुरुगोविन्दम्' महाकाव्य के पश्चात् 'पन्ना' सुभद्राजी का खंड-काव्य है। दोनों में अंतर रूप और आकार का है, चेतना और भावना का नहीं। दोनों की दृष्टि का केंद्र भारत का ऐतिहासिक गौरव एवं उच्च सांस्कृतिक दिशा बोध है। यदि गुरु गोविन्दसिंह कट्टर धार्मिक, संकीर्णतापरक भ्रष्ट शासन के विरुद्ध मानव की स्वाधीनता के लिए संघर्ष करते हैं तो 'पन्ना' वैभव के मद में चूर, हत्या तथा रक्त-पात के माध्यम से राज्य प्राप्ति के लिए कटिबद्ध बर्बर सामंत की साजिश के विपरीत संघर्ष करती है। दोनों का ही ध्येय इंसान का संस्करण और संरक्षण है। इस ध्येय की प्राप्ति का मार्ग भी महान एवं गौरवशाली है।

'पन्ना' छह सर्गों का लघु खंड-काव्य है, किंतु वह इंसान के सत-असत रूपों का सम्यक् रूपायन करता है। राज-प्रासादों के अंतःपुर की कुटिलता, सामंतों की बर्बरता, स्वार्थपूर्ति के लिए नैतिक मूल्यों का परिहार, भय और संकोच के कारण सत्य-कथन और आचरण के साहस का अभाव आदि सामंतीय जीवन के तत्त्व थे। वे सामंत मुगल-शासन के सम्मुख नत मस्तक थे और जनता के सामने ईश्वर के अवतार। उनके जीवन का यह विरोधाभास था। उनका वास्तविक जीवन षड्यंत्र, कुटिलता और रक्त-पात से भरा था। उनकी समता में 'पन्ना' जैसी धाय और महलों की सफाई करने वाले कीरत जैसे लोगों मानवीय मूल्यों के साथ अधिक प्रतिबद्ध। 'पन्ना' नामक खंडकाव्य, मानव-जीवन के इन दोनों पक्षों का अत्यंत कलात्मकता के साथ चित्रण करता है। अंतःपुर की कुटिलता का एक बिंब अवलोकनीय है :

> ''विक्रमादित्य जीवित न रहे
> छाती में घोंपा चन्द्रहास
> बनवीर बुभुक्षित सिंह सदृश
> टूटा उन पर ले रक्त-प्यास।''

दरबारी सामंत विक्रमादित्य के बधिक को राजतिलक करके दूसरे वध का मार्ग

प्रशस्त करते हैं और पन्ना तथा कीरत उनके कुचक्र को विफल। कवयित्री ने बड़े कौशल के साथ सामंती प्रासादों तथा दरबार के चित्र अंकित किये हैं। उनके अभाव में पन्ना के वात्सल्य, त्याग, आदर्श-निर्वाह और साहस की कथा पूर्णतः आलोकित न हो पाती। कर्त्तव्य-बोध और वैयक्तिक हित, वात्सल्य और स्वामीभक्ति, अपनाहित और जन्मभूमि के लिए त्याग के बीच द्वंद्व को पन्ना के माध्यम से व्यक्त किया है :

''कर्तव्य झकोर गया उस तट
इस तट ममता की पीड़ा थी,
कर्तव्य प्यार में एक चयन
विधना की कैसी क्रीड़ा थी ?''

इसी प्रकार क्रोध, निराशा, साहस, संघर्ष-कामना, चिंता, शौर्य आदि के अनेक सुंदर बिंब प्रस्तुत कृति में भरे पड़े हैं। इनके अतिरिक्त, कतिपय सार्वभौमिक सत्यों की कलात्मक अभिव्यक्ति रचना का दूसरा विशेष गुण है। यथा :

''हरि-प्रसू ऐसी धरा पर रोज तो आती नहीं
सिंह के आगे मृगी जा शक्ति दिखलाती नहीं।''

''सतत सुख का नाम जीवन
है नहीं इस लोक में,
किन्तु यह भी तो नहीं
डूबे रहें नित शोक में।''

''वार सोते सिंह पर
करना न क्षत्रिय धर्म है,
यही गीता और शास्त्रों
का अलौकिक मर्म है।''

''अपना दुख ऐसा दुख जैसे
राई लगे पहाड़,
अपना हो न बसन्त, और की
हरषें देख उजाड़।''

इस प्रकार के कथन प्रस्तुत रचना की निधि हैं।

आज के युग में, इस रचना का विशेष महत्त्व इसलिए है कि यह न तो किसी

जाति विशेष की संस्कृति का गायन करती है, न ऐतिहासिक-पौराणिक तथ्यों को संकीर्ण दृष्टि से अंकित करती है और न राष्ट्र तथा समाज में धर्म, जाति एवं दल विशेष की दृष्टि से तोड़ती-मरोड़ती है। वह हत्या, रक्तपात, कूटनीति, षड्यंत्र, अनैतिकता, अमानवीयता के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीयता, मानवता, नैतिक और साहस का गायन इस प्रकार करती है कि पाठक असत् से सत की ओर, बुराई से भलाई की ओर, जाति से राष्ट्र की ओर और अमानवीयता से मानवीयता की ओर आकर्षित होता है। यही कला का सत्य, शिव और सुंदर है।

मेरी अपनी मान्यता है कि ऐसी रचना का स्वागत होना चाहिए।

बड़ौत (मेरठ)

–डॉ. नत्थन सिंह

अनुक्रम

प्रस्तुत
का बह
दीप है
के लि
होती त
वह अ
लिए न
कर्त्तव्य
और व

नागार्जु
"'पन
कथान
'पन्ना'
आजक
में सुभ
है।"

कि उ
बिना

'पन्ना
उन प्र
नहीं
रखक
बीच–
इतिहा
आशा

ISBN

प्रथम सर्ग

जय एकलिंग, जय एकलिंग
जय हो,
जय एकलिंग जय हो।

मेवाड़भूमि का गौरव
चित्तौड़ दुर्ग चिर वैभव,
प्रसरित हो यश की गाथा
गुंजित सपनों का कलरव।
जय हो,
जय एकलिंग जय हो।

नूतन विहान लहराये,
अरुणाभ गगन गहराये,
सत्ता का अविचल दीपक
दिनमणि बन ज्योति जगाये।
जय हो,
जय एकलिंग जय हो।

अक्षय नगपति-सा शासन
निष्कंटक हो सिंहासन,
बाधाविहीन सब राहें
रिपुओं का हो मद-मर्दन।
जय हो,
जय एकलिंग जय हो।

अप्राप्य प्राप्य बन आया
तेरी विश्वंभर माया,
रजताभ आज की दुनिया
स्वर्णाभ लिये कल छाया।
जय हो,
जय एकलिंग जय हो।

गुनगुनाता फिर रहा था
नृपति बन, बनवीर,
विकल-व्याकुल व्यग्र-आतुर
कल्पना गम्भीर।

अचल हो यह राज्य-सत्ता
मणि मुकुट मेवाड़,
यों चलूँ, चलता विपिन, ज्यों
अभय सिंह दहाड़।

गंध से कंप दौड़ उठती
मेमनों की भीड़,
पवन सम जिस दिशि उड़ूँ
लख छोड़ दें खग नीड़।

पाँव जिस पथ पर धरूँ मैं
क्षण वही रिपु-हंत,
चाह मेरी-अमित अम्बर
स्मित अनन्त वसन्त।

लग गया था क्यों न जाने
दासता का शाप ?
वह मिटाना ही पड़ेगा
क्या मिटेगा आप ?

मानता हूँ, है न राणा
का निरापद वंश,
पर कहे कोई कहाँ है
अन्य का ही अंश।

नृपति हूँ कोई उठायेगा
नहीं आपत्ति,
किंतु किस क्षण उभर आये
प्रबल भाग्य विपत्ति।

शीतला माँ एक दासी
व्याप्त है दासत्व,
जाग जाये वंशजों में
कब न क्षुब्ध ममत्व।

आन के हैं, बान के हैं,
सब हठी सरदार,
द्रोह कर दें, लक्ष्य ले यह
थामकर तलवार।

क्षण बनाये और कर दें
स्वप्न चकनाचूर,
कब किसे रच दे, मिटा दे
काल की गति क्रूर।

सूर्य उगता, फिर गिराता
विपुल दल अंगार,
किंतु संध्या आ गरजती
नष्ट विभु संसार।

चंद्र उगता है गगन में
चंद्रिका सुकुमार,
उषा ले जाती उठाकर
तारकों का हार।

राज्य-सत्ता दृग न कितने
विकल और अधीर
राह तकती झनझनाती
पाँव हित जंजीर।

नित्य कुछ भी तो नहीं है
अखिल विश्व अनित्य,
भूल जाऊँ क्या इसी से
उचित, करुणा कृत्य।

सुन चुका था नृप परीक्षत
मृत्यु का संदेश,
रच गया था टालने को
क्या न कृत्य अशेष?

आज के मद में भरमना
अज्ञ नर का काम,
नर विचक्षण सतत कल पर
सोचता अविराम।

गंध लिप्सा कमल दल में,
बंद विलसित भौर,
द्विरद जाता डाल मुख में
आ न पाती भोर।

त्वरित रिपु की चाप सुनकर
हिरण उठता भाग,
जान जाता है विपद को
और जाता जाग।

ज्ञात विक्रम को भला
कब था, छिनेगा राज्य,
और छायेगा सहज
बनवीर का साम्राज्य।

इस तरह ही कब न जाने
बदल जाये धार,
पहुँच जाऊँ और मैं
इस पार का उस पार।

एक झोंका आ प्रभंजन
का, विरल मधुमास,
धूल में सब कुछ मिला दे
पतझरों का हास।

पुत्र दासी का प्रवाहित
शुद्ध राणा रक्त,
कब बदल जाये पता क्या
आज जो है भक्त ?

हाय पृथ्वीराज तूने
भी किया अन्याय,
दासतावश ग्रसी निर्मम
मातु थी निरुपाय।

प्रजा को समझा प्रजा कब
कहाँ सत्य विवेक,
क्या अधीनस्था करे जब
व्याप्त हो अविवेक।

कौंधता मेरी रगों में
आज दृढ़ प्रतिशोध,
देखता हूँ रोकता है
कौन-सा अवरोध।

मूर्खता पर हँसी आती
जब समुद सरदार
तिलक करते, कर रहा था
मैं न अंगीकार।

दासी तनय कह गया था
भावनाएँ हीन,
बन रहा था निबल कितना
और कितना दीन।

रक्त राणा का प्रवाहित
यह नहीं था ज्ञात,
स्वयं ही ठुकरा रहा था
यह सुनहला प्रात।

एक मत से कर गये थे
सुदृढ़ निश्चय व्यक्त,
क्रूर विक्रम को हटाने
थे बने सब भक्त।

या कि समझा था सभी ने
बात उनकी मान,
मैं चलूँगा, मैं करूँगा
तंत्र का निर्माण।

क्रूर था विक्रम अगर तो
मैं रहूँ अक्रूर,
राज्य सत्ता-निबलता
सम्बन्ध कोसों दूर।

कर रहा था राज्य विक्रम
कापुरुष निरुपाय,
सोचता जग मैं हरूँगा
पीर, तज अन्याय।

पीर तो पीछे हरूँगा
दृढ़ करूँ अस्तित्व,
देख भी ले तनय दासी
का सभी व्यक्तित्व।

प्रबल अंधड़ सम करूँ यदि
वार पहली बार,
शांत हो जाये सभी कुछ
ले अतुल सत्कार।

वारुणी में चूर विक्रम
है पड़ा मदहोश,
राज जाने का न दुख है
तिल न विधि पर रोष।

समरसिंह का पुत्र राणा
उदयसिंह महान,
क्या न होगा शूल पथ का
हो बड़ा बलवान।

काट दूँगा यदि अभी मैं
यह विरोधी मूल,
चल न पायेगा कभी भी
फिर पवन प्रतिकूल।

क्या बजेगी बाँसुरी ही
जब न होगा बाँस,
मखमली पथ हो कभी भी
चुभ न पाये फाँस।

एकलिंग गिरीश को फिर
मैं नवाता शीश,
प्रेरणा नव शक्ति साहस
नवल दे जगदीश।

साथ जो रहती उदय के
चाँदनी सा रूप,
कांति अद्भुत देख करके
सहम जाती धूप।

पिता सिंह स्वरूप रावल
शक्ति युत सरदार,
हो रहा था उदय जिसके
नृत्य पर बलिहार।

था बुला भेजा उसे फिर
प्यार से की बात,
लग न पाये जिस तरह से
उसे कुछ आघात।

थी मुदित सोना मुदित सुन
फुल्ल कुसुमित गात,
थी विंकल किस भाँति आये
संध्या बेला रात।

अभ्युदय तुलजा भवानी
का हुआ सामोद
मुदित होगा मन, किसी की—
शून्य होगी गोद।

पूर्ण होगा नृप-मनोरथ
हँसेगा सौभाग्य
कीर्ति लेगी स्थान औ—
अवहेलना वैराग्य।

पग न भू पर पड़ रहे थे
मत्त मद बनवीर,
कामना की जा रही थी
तड़ित बादल चीर।

कुंड मयूर पक्ष में हो
आज दीपक दान,
एक ऐसा दीप जिसकी
ज्योति है अम्लान।

समय असमय क्या सभी थी
योजनाएँ मूक,
चाहता था नहीं जाना
आज अवसर चूक।

रूप रंगिणियाँ रहीं कर
नृत्य की अठखेल,
चाहता था खेलना
बनवीर नूतन खेल।

एक मीठा बज रहा था
मद भरा संगीत,
और जिस पर झूमते थे
गौरियों के गीत।

जागो भवानी जागो
तुलजा भवानी जागो।

दर्द विकंपित धरा यहाँ की
अध नाशक है माँ की झाँकी
छितरा दो रस-चितवन बाँकी
जागो भवानी जागो।

जन मन संसृति संस्कृति घायल
राजपूत नृप राणा रावल
उथल पुथल हो नूतन हलचल
जागो भवानी जागो।

कठिन परिस्थितियों के क्षण हैं,
बंधे न रिपु, आगे बंधन हैं,
काली नृत्य, आर्त्त क्रंदन हैं
जागो भवानी जागो।

पथ अवरोधक, धुंधले साये
एक बार आँधी आ जाये
फिर सुख की बगिया लहराये
जागो भवानी जागो।

द्वितीय सर्ग

विलसित नरमुण्डों की माला
यह क्या ? आँखों में अंधियाला,
नभ में अंधड़ काला-काला
जागो भवानी जागो।

धीरे-धीरे स्वर विशाल बन
छूने निकले महा प्रलय को,
ऐसा कुछ धरती से आगे
जय करना हो नील निलय को।

बिखरे-बिखरे मेघों वाली
यह चादर उतार देनी है,
जिसकी थिरकन बहे स्वर्ग में
विजयध्वजा संवार देनी है।

टिम-टिम-टिम करते तारों में
नेह नया अब देना होगा,
जगमग करती नाव समय की
सबल हस्त से खेना होगा।

योग्य अयोग्य न कुछ राजा हित
रंगते रंग रंगे आंचल को,
मृषा सत्य का रूप एक है
राजनीति कहते हैं छल को।

सीधी गति चलने वाले को
जग में मूर्ख कहा जाता है,
वक्र विवुध की परिभाषा है
सरल न यहाँ रहा जाता है।

असरलता जीवन की गाथा
रची विधाता ने हम गाते,
लेखा-जोखा पाप-पुण्य का
कर उठते निर्बल हो जाते।

निर्बल जीवन भी जीवन क्या?
बल रखते हैं वनचारी भी,
नर का रूप सबलता में तो
शक्तिरूपिणी है नारी भी।

देता दैव, क्लीव की भाषा
उद्योगी लक्ष्मी का धारी,
अपने हाथों भाग्य बनाना
अपने हाथों की लाचारी।

सिंहासन तब तक शोभित है
जब तक रक्तिम खड्ग हाथ में,
राजाओं का मुक्त न चिंतन
उलझन के दल लगे साथ में।

सोना झगड़ रही पन्ना से
नगरोत्सव में जाना होगा,
होड़ लग रही है नृत्यों की
जय के गीत सुनाना होगा।

जो भी राजा है राजहित
मन से समुद प्रार्थना करनी,
असमय का यह राग नहीं है
माता है दुखों की हरणी।

उदयसिंह भावी अधिपति है
यह भी दीपक दान करेगा,
माँ चरणों में शीश झुकाकर
नया भाग्य निर्माण करेगा।

बड़े बड़े सरदार वहाँ पर
माता का दरबार सजा है,
उदयसिंह का आसन खाली
दर्शन के हित व्यग्र प्रजा है।

आये हैं बनवीर न अब तक
आ देखेंगे आसन खाली,
जाने क्या सोचेंगे मन में
आँखों में आ जाये लाली।

ऐसा कार्य नहीं करना है
मन मैला हो शुभ अवसर पर,
राज-भक्ति का उदाहरण फिर
प्रश्नचिह्न बनता है आकर।

मुझको सिखलाती है सोना
तूने कितने सावन देखे,
दीपमालिका के मुख कितने
दग्ध होलिका के क्षण देखे।

दो दिन की छोकरी तुनक कर
आसमान से बात बनाती,
योग्य अयोग्य न कुछ भी आता
व्यंग्य भरे आघात उठाती।

छोटा मुँह बातें ये उन्नत
नहीं तू नहीं और बोलता,
तुझको जान रही मैं युग से
अन्दर कोई और डोलता।

माँ, यह क्या कह रहीं आज तुम?
उदयसिंह के बिना नहीं मन,
लगता, किसी स्थान पर मेरा
ऐसा ही तो सारा जीवन।

साथ उदय के सदा खेलती
साथ नाचती गाती हूँ मैं,
उसका कथन मुझे गीता है
इंगित पर मुसकाती हूँ मैं।

उसके बिना लगेगा कैसे
दीपदान में मेरा अंतर,
जब नाचूँगी, कौन दिशा से
वाह-वाह का आयेगा स्वर।

माँ कहती हूँ बार-बार मैं
मेरा निश्छल मन पहचानो,
उदयसिंह को भेजो संग में
उत्सव का अवसर अनुमानो।

स्वयं जानती, कितना जिद्दी
दृढ़ हो कहा न मैं जाऊँगा,
निर्बल ही माँगा करते हैं
हाथ नहीं मैं फैलाऊँगा।

नाहर ने कब जोड़े दाने
पंछी का क्या रैन बसेरा,
चलने वाले के हित बाधक
नहीं अँधेरा, नहीं उजेरा।

माता देती, ईश्वर देगा?
यह सब कुछ मैं समझ न पाया,
हर कोई अपना भविष्य ले
भाग्य लिये धरती पर आया।

किसे पता था छोड़ अकेला
सुरपुर जनक चले जायेंगे,
तुलजा कहाँ गई थी तब तुम
क्या यों भाग्य छले जायेंगे।

पितु राणा संग्रामसिंह ने
कितना पूजन, कितना अर्चन,
किया तुम्हारा भक्ति भाव से
कम था उनका कहीं समर्पण?

जो वे ऐसे आहत होकर
जिये, और दुख पीड़ा झेली
होती रक्षा कर सकती थी
शक्तिशालिनी स्वयं अकेली।

पत्थर की उन प्रतिमाओं में
प्राण फूँकना सरल नहीं है,
मन अर्पण में तरल दृगांबर
रखता पापी गरल नहीं है।

मैं क्यों सोचूँ यह सब बातें
पंडित और पुराणों की हैं,
मैं बालक हूँ सभी उलझनें
धर्मग्रन्थ आख्यानों की हैं।

माता कर्णवती न रही तो
राणा साँगा कहाँ रहे हैं,
बड़े-बड़े रिपुओं के जिनके
आगे उन्नत स्वप्न ढहे हैं।

जो भी कुछ हो इस उत्सव में,
सोना उदय नहीं जायेगा,
नहीं विरोध, हुआ भी तो क्या?
उदय नहीं फिर पछतायेगा।

माँ के मन कुछ और भरा था
और और कुछ बालक मन में,
प्रतिक्रिया थी एक, न जाना
असमय के अर्चन वंदन में।

और उधर वंदना भवानी
की स्तुति ऊँचे उठती जाती,
जैसे उदयसिंह पन्ना को
स्वयं शिवा आवाज लगाती।

समझ रही थी सभी धाय माँ
बिछा हुआ षड्यंत्र भवन में,
कौन विपत्ति किसे ग्रस लेगी
इस उत्सव वाले आँगन में।

असमय किये कार्य का कोई
होता ही है अलग प्रयोजन,
जिसे समझता एक नियन्ता
या जो होता उसका भाजन।

राजा से आयोजित है यह
शंका नहीं पनपने पाती,
राजतंत्र में पलती आई
कोई क्रिया न क्या अभिघाती?

सोना चली गई यह सुनकर
स्नेह सरल आवरण हटाकर,
जैसे अर्पित हो बैठी हो
तुलजा के उत्सव में जाकर।

सरदारों की भीड़ बहुत थी
किन्नरियों का नृत्य चल रहा,
छलती आई शिखा शलभ को
यहाँ शिखा को शलभ छल रहा।

एक-एक आसन पर जाकर
व्यक्ति व्यक्ति को ताक रहा है,
नृप बनवीर अकेला मेले
में जाने क्या झाँक रहा है?

आशा हुई बलवती, मन तो
गर्वित सीना तन जाता है,
हलका कहीं निराश झोंका
चाल-ढाल में छन जाता है।

बोल भवानी तुलजा की जय
निकल गया बनवीर तीर सा,
आगत सपनों को उलझाता
अनजाने बहते समीर सा।

यह मंतव्य कहाँ पूरा है
जमकर जो यह जादू छाया,
लगता सभी अधूरा है यह
नहीं अभीष्ट विहग है आया।

बंधन में न सिंह आता है
फँसते सदा श्रृगाल जाल में,
मन पर जीते रहे मनस्वी
है ही क्या संसृति विशाल में।

यदि वे कालजयी बनते हैं
मैं करना आखेट जानता,
हाथ शक्ति सम्पन्न अगर है
नहीं कहीं भी भाग्य मानता।

उनका भाग्य साथ में उनके
मेरे हाथों में तो असि है,
यदि वे जीवित रहे और कुछ
फेर भाग्य पर देना मसि है।

पितु की याद नहीं है, मैंने,
माँ से राजनीति सीखी है,
खाली गये वाण की होती
कितनी प्रतिक्रिया तीखी है।

बध्य-अबध्य सोच कायरता
वार नहीं खाली जायेगा,
जिस पर की अनुकंपा वह ही
आगे बन अराति आयेगा।

जिसने सेकर औ सहलाकर
जीवन का निर्माण किया है,
उस परभृत को अपनी कू में
कोकिल ने कब स्थान दिया है।

परैधिता है चिह्न गर्व का
पालक स्वामी हो जाता है,
ऐसी बात नहीं, वर्तनि से
चेटक का भी कुछ नाता है।

यह कर्तव्य उसी का जिसने
पाला पोसा दुलराया है,
करके लघु या गुरु करतब कब
करने वाले ने गाया है।

इन सबसे मन दुर्बल होता
राजनीति की चाल और है,
इंडित कुछ, गति कुछ, कृति कुछ है
ऐसा चलता रहा दौर है।

बन करके कृतज्ञ चलना तो
सरल, कठिन कृतज्ञ बन जीना,
लादे यह लादी जीवन भर
चलते कब मृग सिंह अदीना।

यह जो ओढ़ लिया भावों का
वस्त्र उतार फेंकना होगा,
यह अम्बार हटाना होगा
यह गलहार फेंकना होगा।

केसर क्यारी में जहरीले
साँप नहीं पाला करते हैं,
कुछ करने के समय विचक्षण
सुरा नहीं ढाला करते हैं।

हाला प्याला साथ अनेकों
भट हैं, ले बैठा है विक्रम,
ज्ञात नहीं है निकट टूटने
वाली है साँसों की सरगम।

जय तुलजा जय काली गोरी
जागो शिवा भवानी जागो,
समुद्र स्मरण बनवीर कर रहा
रूदाणी शर्वानी जागो।

मुष्ट पकड़ कर खींच खड्ग को
हल्का-सा प्रहार कर डाला,
सूनेपन में बिखर गया था
अरुणिम-अरुणिम-सा उजियाला।

उजियाले में छवि विक्रम की
अद्भुत दीप्ति बिखेर गयी थी,
छवि को और दीप्ति को सहसा
उसकी दृष्टि तरेर गयी थी।

नहीं म्यान में खड्ग गया फिर
सूनेपन को चीर चल दिया,
दृढ़ मंतव्य लिये आँखों में
नर कोई गम्भीर चल दिया।

आफत लेकर आँधी निकली
साहस लेकर तूफान चला,
गौरव साँगा का, दासी का
अरमान चला, अभिमान चला।

नन्ही-सी ज्योति विसुध कोई
अंधियारे का उमड़ा पहाड़,
नद लोहिताश्व का उद्यत है
कर देने को वन थल उजाड़।

चलता है पवन प्रभंजन बन
झंखाड़ों को हटना होगा,
लो सूरज का रथ आता है
अंधियारों को छँटना होगा।

चल पड़ा पथिक उन्माद लिये
आना ही होगा लक्ष्य निकट,
असफलता उनको नहीं कहीं
जिनके होते हैं स्वप्न विकट।

विक्रम के साथ अनेकों भट
मदिरा की मस्ती में डूबे,
कह रहे अनर्गल-सा जिसके
उल्टे-सीधे थे मनसूबे।

करवाल चुभ गया छाती में
बह चली वक्ष से रक्तधार,
चुक गये विधाता से जितने
आया था लेकर क्षण उधार।

तृतीय सर्ग

ज्वाला प्रज्ज्वलित कहीं लपटें
रखती हैं ऐसी गर्माहट,
अनकहे दूर शीतलता में
भर जाती है अद्भुत आहट।

निश्चिन्त हृदय जलने लगते
खग व्याकुल अमित उड़े जाते,
विह्वल अम्बर सहमा-सहमा
उज्ज्वल सपने पास न आते।

मेघों की सौदामिनी कड़क
भू का भय आँक नहीं पाती,
चन्दा तो निकला रहता है
ज्योत्स्ना तम झाँक नहीं पाती।

विक्रम का क्षत-विक्षत शरीर
था पड़ा अजिर के कोने में,
पर उसकी गंध चतुर्दिक जा
फैली थी नयन भिगोने में।

दुंदुभि स्वर से ले अधिक तीव्र
गति, कानों कानों समाचार,
था फैल गया अंतःपुर तक
जिसका रहस्य था दुर्निवार।

सोना की हठ को टाल गयी
थी पन्ना विद्रोही बनकर,
उसकी आँखों में तो भविष्य
पहले ही आया था छनकर।

इसलिए कहा था नहीं, नहीं
उत्सव देखेगा यह कुमार,
था ज्ञान उसे यह पग-पग पर
आशीविष बैठे हैं हजार।

आया प्राणों से प्यारा सुत
उसने पूछा भरकर दुलार,
आँखें सतृष्ण कर लिये कमल
भाई की ले ममता अपार।

है कहाँ उदय ? मैं भूखा हूँ
माँ ! दो, दोनों को भोजन दो,
आशीष हाथ रख दो सिर पर
मुख पर मीठा-सा चुंबन दो।

वह जान नहीं पाया माँ के
उर में कितनी वेदना भरी,
कितना दुख, कितनी तड़पन है
चिंताओं की सिर पर गठरी।

वह बोल उठी सो गया उदय
वह भूखा ही सो गया आज,
इस कोने में धरती पर ही
सपनों का लेकर एक राज।

तू खा ले, उसे खिला दूँगी
शय्या पर पुनः सुला दूँगी,
उसके माथे को चूम नेह
की गोदी में दुलरा दूँगी।

तू उसका ध्यान न कर बेटा
वह सोया है, सो जाने दे,
वह भी थक करके आया है
पल तन की थकन मिटाने दे।

वह भी बालक, तू भी बालक
दोनों ही बालक हैं मेरे,
तू क्या जानेगा बैचेनी
चिंता कितनी मुझको घेरे ?

आ, मेरी गोदी में आ जा
छाती से तुझे लगा लूँगी,
तिनके मन के बिखरे-बिखरे
युग-युग की प्यास बुझा लूँगी।

सोया है भू पर उदयसिंह
तू उसकी शय्या पर सो जा,
उसको चन्दन हो जाने दे
तू पल भर उदयसिंह हो जा।

दोनों आँखों के तारे हैं
वह उदयसिंह, तू है चन्दन,
दोनों मेरे सुत, दोनों की
मैं माँ, दोनों के हित जीवन।

कुछ खिला-पिलाकर प्यार अतुल
चूमा-चुमकारा चन्दन को,
खाली शय्या पर सुला दिया।
प्राणों के इकलौते धन को।

था उदयसिंह की शय्या पर
पन्ना का राजदुलारा सुत,
सुखमय भविष्य की मृदुलाशा
सपनों का वह बनजारा सुत।

सामली दौड़ती हुई तभी
आयी, वाणी में दर्द लिये,
आँखों से बहती अश्रुधार
दुख पीड़ा आहें सर्द लिये।

चीखी माँ यह तो सर्वनाश
हो गया, बताऊँ अब कैसे ?
जो सुना हृदय फूटा जाता
अधरों पर लाऊँ अब कैसे ?

विक्रमादित्य जीवित न रहे
छाती में घोंपा चंद्रहास,
बनवीर बुभुक्षित सिंह सदृश
टूटा उन पर ले रक्त-प्यास।

जब उसके हित सिंहासन का
प्रस्ताव किया सरदारों ने
कितना था दीन कहूँ क्या मैं ?
अनुनय की थी उद्गारों ने।

मैं योग्य कहाँ सिंहासन के
हूँ विक्रम के समकक्ष कहाँ ?
पैतृक धन नीति निपुणता का
फिर उस जैसा हूँ दक्ष कहाँ ?

कहते हो सिंहासन ले लो
अनुरोध न अस्वीकार मुझे,
मेवाड़ भूमि की रक्षा में
अर्पित हैं ये क्षण चार मुझे।

आपके दिशा-निर्देशन से
यह शासन-भार सँभालूँगा,
जब आप और वे साथ-साथ
कहते हो, राज चला लूँगा।

इतना कह-सुनकर ही उसने
पकड़ी शासन की बागडोर,
लेकर सिंहासन को उसने
कितना कर दिया अनर्थ घोर।

विक्रम तो नहीं रहे भू पर
अब उदयसिंह की है बारी,
माँ ! कैसे होगा ? क्या होगा ?
यह दुख की रजनी अंधियारी।

वह शेष नहीं रहने देगा
जो सिंहासन का अधिकारी,
करवाल उठा आता होगा
मैं उदयसिंह पर बलिहारी।

मेवाड़ वंश की दीपशिखा
माँ तुमको इसे बचानी है,
यह समय परीक्षा का आया
आँचल की लाज निभानी है।

सामली कलेजा फटता है
हो रहा हृदय पर वज्रपात,
अब सहा नहीं जायेगा यह
विधि का कैसा है चक्रवात ?

मैं भाग चली जाती हूँ अब
लेकर के दोनों पुत्र साथ,
बनवीर करेगा क्या आकर
खाली जायेगा पटक माथ।

रोकेगा मुझे नहीं कोई
सब ही करते मेरा आदर,
सबको है ज्ञात धाय पन्ना
सिंचित अनुकंपा से अंतर।

रहती है बंधनमुक्त सदा,
मानते सभी आज्ञा इसकी,
रोकेगा कौन मुझे जाते
साहस किसका? हिम्मत किसकी ?

इतने में हतबारी आया
आकर अभिनव संदेश दिया,
चहुँ ओर महल के सैनिक हैं
दृढ़ता से हमको घेर लिया।

इतना कुछ भयप्रद पहरा है
जा पाये बाहर विहग नहीं,
इतने कठोर, इतने उद्यत
जितना होता है उरग नहीं।

माँ कैसे बाहर जाओगी
निर्देशित हैं सारे अनुचर,
बनवीर मारकर विक्रम को
आने ही वाला है सत्वर।

मैं जूठन उठाने था गया
सब कुछ आया हूँ देख वहाँ,
बाहर न जा सकेगा कोई
पहरा ऐसा है जहाँ तहाँ।

मैं जूठ उठा ले जाता हूँ
इसलिए न कुछ भी रोक टोक
मेरे अतिरिक्त वहाँ कोई
जाता सब लेते हैं विलोक।

बच पाता कोई नहीं सहज
कुछ ऐसा फैला हुआ तंत्र,
इसलिए न तुम जा पाओगी
मत समझो माँ तुम हो स्वतंत्र।

माँ बोली—अच्छा प्रिय बारी
तुम ही कर सकते सफल काज,
मेवाड़-दीप के रक्षक बन
अनमिट रख सकते वंश-लाज।

इतना कह माँ ने बारी का
टोकरा उठा, ले राजकुँअर,
धीरे से सुला दिया उसमें
लोरी गाकर, थपकी देकर।

ऊपर से जूठन औ पत्तल
भर दी, शत-शत आशीष दिये,
चुपचाप कहा ले जाओ अब
हौले-हौले निज अधर सिये।

जग जाये नहीं कुँअर ऐसे
बचकर चलना अंधियारे में,
ठोकर न लगे, सिर नहीं हिले
मद-उद्धत पहरेदारों में।

इतना सुन माँ के नीतिवचन
बारी ने सुख की साँस भरी,
ले गया उठाकर ज्योति पुंज
मेवाड़ वंश की वह गठरी।

निश्चित था बेरिस नदी-तीर
माँ का नन्हा अरमान चला,
दिनमान चला उजियालों का
पन्ना माँ का अभिमान चला।

लो राजपूत गौरव जाता
निद्रित सपनों का जाल चला,
षट वर्ष आयु का ललित लाल
अप्रतिम देश का भाल चला।

बारी ने कर माँ को प्रणाम
पग डाल दिये निर्देशित पथ,
पहरे से निकल गया निर्भय
झिलमिल-झिलमिल आशा का रथ।

आश्चर्य महा सद्भाग्योदय
नन्हे की नींद नहीं टूटी,
कितना था पुण्य प्रताप अमिट
सपनों की डोर नहीं छूटी।

बेरिस नदिया के तट पर जा
टोकरी सहज रख दी उसने,
थे घाव हृदय तट पर गहरे
लोहित न दिया तिल भी रिसने।

महलों में रहने वाला शिशु
था पड़ा हुआ वीरानों में,
आहट न सुनी नीलाम्बर ने
खलबली न थी मैदानों में।

पर्यङ्क शयन करते निर्बल
सिंहों ने कब समतल देखा ?
कब बीहड़ बन कब घास-फूस
कब तम उजियालांचल देखा ?

दिन-रात प्रात-संध्या अरुणिम
कब मुहूर्त निकाले जाते हैं,
चलने वालों को सदा लक्ष्य
पथ पर आवाज लगाते हैं।

नित उदयसिंह के हित माना
पर्यङ्क सजाये जाते थे,
लोरी देकर निंदिया के स्वर
निशि में बिखराये जाते थे।

पर वह तो सिंह पुरुष उसको
मृदुता से क्या, लोरी से क्या
सज्जा की मनुहारों से क्या
सोना की बरजोरी से क्या।

वह सोया जैसे आसमान
वह सोया ज्यों हिमगिरी महान,
प्राची के अंतर में जैसे
सोता कोई दिनमणि महान।

सोना नर्तन में मगन उधर
सज्जा भी डूबी गीतों में,
सामली किन्तु पन्ना के संग
थी खड़ी हुई भयभीतों में।

आहट न किसी को भी आयी
बालक के बाहर जाने की,
चित्तौड़ दुर्ग के जीवन की
अनुपम उस अतुल खजाने की।

माता थी टूट गई जैसे
घट बिखर गया अरमानों का,
था भान नहीं निज का, पर का
जलती लौ का, परवानों का।

जल धार बरसती आँखों से
सोये चन्दन को चूम-चूम,
कुछ निकट महल के आँगन में
नर्त्तित बालायें रहीं झूम।

उस ओर चल रहा राग-रंग
इस ओर करुण क्रंदन पुकार,
उस ओर भवानी माँ बेसुध
इस ओर धाय माँ-चीत्कार।

पूरब की लाली उधर खिली
संध्या का वातावरण इधर,
था राग-रंग इस ओर तरल
माता गंगा की शरण इधर।

माँ निश्चितता में डूबी थी
सुत का बलिदान चढ़ाना था,
ले गया कुँअर को तो कीरत
चन्दन को कुँवर बनाना है।

यह बात न कोई जान सका
जो जान सका वह चला गया,
किसकी थी आई, और कौन
उसकी आई में छला गया।

माता हतप्रभ बैठी-बैठी
अपने सुहाग को रोती थी,
उसने जो अमल निशानी दी
उस सुत अभाग को रोती थी।

कर्तव्य झकोर गया उस तट
इस तट ममता की पीड़ा थी,
कर्तव्य प्यार में एक चयन
विधना की कैसी क्रीड़ा थी ?

खूँटी पर टाँग प्यार पावन
उसने कर्तव्य उठाया था,
यों तो मैं माँ हूँ, यह सुत है
रह-रह यह मन में आया था।

पर वह क्या है ? सुत नहीं अगर
हाँ ! राजपूत की एक शान,
थाती है, एक धरोहर है
भू से ऊपर, नभ से महान।

कीरत ने निश्चितता भर दी
अन्तर में कोई द्वन्द्व नहीं,
माँ ऐसी एक प्रार्थना है
जिससे आगे कवि-छन्द नहीं।

बनवीर खड़ा दीखा आगे
मदिरा में डूबा चूर-चूर,
कर में करवाल रक्त भीगी
छलकता दृगों में दर्प क्रूर।

अनचाहे ही पन्ना माँ को
आतुर करके प्रणाम बोला,
तुम स्नेह सलिल की धारा माँ
बनकर बालक अकाम बोला।

अंधड़ बोला तरु शाखों से
मैं लेकर आया हूँ बसन्त,
नगपति बोला सरिताओं से
मेरी मृदुता का नहीं अन्त।

माया बोली मैं सत्य सुलभ
तृष्णा बोली मैं तृप्तिगान,
अनवरत खड़ा मद बोल रहा
मैं निरभिमान, मैं निरभिमान।

माँ तू ममता की प्रतिमा है
मेवाड़भूमि का धर्म-पुंज,
भू नभ पातालों में गुंजित
तेरी सेवा का गीत गुंज।

यह राजपाट सब तेरा है
पर ज्ञात तुझे मैं अधिपति हूँ,
केवल न क्रूरता ही मुझमें
है जहाँ, न्रमता वह यति हूँ।

केवल आभार प्रदर्शन ही
मेरा तात्पर्य नहीं जानो,
जो लेकर मन में आया हूँ
उसके स्वरूप को पहचानो।

मैं चाह रहा देना तुमको
कुछ भूमि नगर का आधिपत्य,
जो सेवा की उसका फल है
इन वचनों में सर्वथा सत्य।

डरती-डरती माँ बोल उठी
जो मिला मुझे यह क्या कम है,
क्या केवल यह जनश्रुति ही है
परलोक गया क्या विक्रम है ?

माँ इस रहस्य को मत पूछो
नृप का आया उत्तर कठोर,
मैं तुमको कुछ देने आया
खुशियाँ आगे हैं लो बटोर।

क्या देने, क्या लेने आये
है ज्ञात मुझे सारा आशय,
नंगी रक्तिम तलवार लिये
क्या कुछ करना है क्रय-विक्रय ?

तलवार म्यान में रख लो फिर
कह लेना, जो कहना-सुनना,
जीवित रहते, मंतव्य पूर्ण
हो, ऐसा अर्थ नहीं गुनना।

बौखला गया बनवीर तभी
क्रोधित हो बोला उदय कहाँ,
तलवार रक्त की प्यासी है
बन करके आई प्रलय यहाँ।

बाहर आकर के एक बार
क्यों खड्ग म्यान में जायेगा,
जितना लोहित में डूबेगा
उतना खुमार लहरायेगा।

राणा का वंश मिटाओगे
होकर के राणा दास-पुत्र,
राणा की अनुकंपा तुम पर
है गया सहज दासत्व कुत्र।

दासी का पुत्र आज राणा
के कुल का रिपु बनकर आया,
तुमको धिक्कार, वीरता को
क्या उचित यही ? दुष्कृत भाया।

इतना सुन नृप गुर्रा बैठा
आँखों से निकले अंगारे,
कुछ पाँव बढ़े ज्यों ही आगे
आगे माँ थी साहस धारे।

जैसे मृग अपने सुत के हित
मृगपति के आगे आ जाता,
अपने बल का, उसके बल का
कुछ भान नहीं है रह पाता।

यह प्यार स्नेह मम का दुलार
हेयोपादेय भुला देता,
तुल जाये तो कैसा विवेक
बेदी पर प्राण चढ़ा देता।

हुंकृति भर माता के कर को
बनवीर क्रुद्ध ने झटक दिया,
था रौंद दिया स्नेहिल दुलार
ममता को भू पर पटक दिया।

फट गया धाय माँ का अन्तर
चिल्लाई बोली हाय लाल !
अब तक पाला तुझको जी भर
कैसे यह रोकूँ उठी ज्वाल।

मैं कैसे न मरूँ तुझसे पहले ?
मैं क्यों न चलूँ तुझसे पहले ?
मरघट की तप्त शिखाओं में
मैं क्यों न जलूँ तुझसे पहले ?

मैं आती हूँ ठहरो पामर
मैं पहले जीवन वारूँगी,
जिस पथ जाने वाला है सुत
वह पथ जा पूर्व सँवारूँगी।

मैं हूँ हताश, मैं हूँ निराश
मेरे मुन्ने, मेरे प्यारे,
बुझते जाते हैं रह-रह कर
आँखों के सपने रतनारे।

जाने से पहले एक बार
गोदी में तुझे बिठा लूँ मैं,
ओंठों से ओंठ चूम जाऊँ
पलकों में तुम्हें झुला लूँ मैं।

था अंधियाला क्या अंधियाला ?
होता था कुछ भी ज्ञान नहीं,
देखा पर्यङ्क, राजकुल का
आया मद में कुछ ध्यान नहीं।

चन्दन सोया था सपनों में
सोचा, यह सोता राजकुँअर,
बाँछें खिल गईं दास सुत की
पल जाती जैसे आयु ठहर।

गर्जा तर्जा आवेश लिये
इस्से पहले सुत उठ जाये,
तलवार घोंप दी छाती में
तुलजा माँ के मंगल गाये।

चतुर्थ सर्ग

प्राण प्यारे पुत्र को रख
कर चिता की गोद में,
राजपूती शान फिर भी
दग्ध उर-प्रतिशोध में।

निकल कर चल दी अकेली
महल से रनिवास से,
कंठ सूखा जा रहा था
उग्र अनबुझ प्यास से।

एक दीपक दान ऐसा
जो न कोई कर सका,
रक्त से निज माँ भवानी
का न आँचल भर सका।

कर सका ऐसे न कोई
अप्रतिम बलिदान को,
गुरु अनश्वर कर दिया हो
समय के अभिमान को।

धर्म रथ की वैजयन्ती
को फहरने के लिए,
भोग की भौतिक शिखा से
कलुष हरने के लिए।

राजपूती वंश खीची
का उजागर कर दिया,
लाल को बलिहार युग की
रिक्त झोली को सिया।

कर गई कुछ देश के हित
घोट ममता का गला,
सूर्य आभा शांत, सकुचित
चाँद की सोलह कला।

हरि-प्रसू ऐसी धरा पर
रोज तो आती नहीं,
सिंह के आगे मृगी जा
शक्ति दिखलाती नहीं।

मिल हजारों उडु-शिखाएँ
विवश होती हैं जहाँ,
अंधतम को दूर करता
शशि अकेला ही वहाँ।

इस तरह घिरती घटाएँ
इस तरह बहता पवन,
दीख पाता है न पावक
भस्म कर जाती अगन।

कौन आया ? कौन जायेगा ?
नहीं तज देह को,
ठहर कर पर कौन जाता
कर सुवासित गेह को ?

शासकीय प्रभुत्व को
सहता रहा है आदमी,
शाप वर देकर विवश
रहता रहा है आदमी।

गर्व से जो कट गया
नीचा किया मस्तक नहीं,
वह अजर है वह अमर है
युग बनाता है वही।

क्षणिक वपु आहुति सजाकर
हो गया चन्दन अमर,
धाय माँ तुलजा शिवा का
कर गई वन्दन अमर।

एक दीपक ढूँढ़ती थी
एक दीपक दान कर,
पूर्वजों की राजपूती
शान का सम्मान कर।

एक दृग में अश्रु छल छल
एक में मुस्कान थी,
एक यदि थी शून्य संसृति
एक स्वर्ग समान थी।

कट गया था एक पग तो
एक था बल से भरा,
गर्व से उन्नत हुई थी
भूमि मरु की उर्वरा।

दुर्ग से बाहर निकलकर
घूमती पश्चिम दिशा,
जा रही थी एक ललना
संगिनी जिसकी निशा।

जहाँ बेरिस नदी बहती
थी रूपहला नीर ले,
दिवस कोलाहल भरा, निशि
शांत सुस्मित तीर ले।

विहग गायेंगे जहाँ पर
अहर्पति की आरती,
अग्निहोत्रों से भरेगी
रस जहाँ माँ भारती।

ले कमंडल वस्त्र भगवा
ऋषि करें विचरण जहाँ
और तप पंचाग्नि में रत
साधुओं के गण जहाँ।

घूमते आखेट करते
नृपति तो, हैं रंक भी,
अंजली भर नीर पीते
हैं अभीरू अशंक भी।

हरित दूर्वादल धरा पर
उदय को ले साथ में,
था प्रतीक्षालीन बारी
ले सुयश को हाथ में।

रिपु चतुर्दिक, सुन न ले
आवाज दे सकते नहीं,
ज्योति का भी ले सहारा
टोह ले सकते नहीं।

भाग्य ही था साथ बेरिस
तट मिला माँ को उदय,
पाप-पुण्यों के छलावे
में मिली अद्‌भुत विजय।

एक आहत मृगी बैठी
शिशु लिये जिन क्रोड़ में,
क्या-क्या न दुख सहने पड़े
किसको पता इस मोड़ में ?

हाय ऐसा यक्ष जिसने
एक शिशु तो खा लिया,
रक्त से जिसके, अपावन
खड्‌ग को महका लिया।

एक दिन होकर बड़ा यह
आग को, प्रतिशोध की,
पवन देगा, और फिर से
दीप्ति होगी क्रोध की।

और फिर संहार कर
रिपु, बना सुफला क्रोड़ को,
जय करेगा, छीन लेगा
हस्त से चित्तौड़ को।

दास पुत्रों का न होता
कभी पावन खून है,
दास नृप हो, दास रहता
यह न शंका ऊन है।

खून पहले देख लो
फिर दृढ़ करो संबंध को,
जो न करता, सामने फल
दीख जाता अंध को।

राजसिंहासन अतः है
राजकुल को ही उचित,
मेट सकता कौन लीला
भाग्य की पर विधि-रचित।

प्रात किरण समीप ही है
अतः चलना चाहिए,
क्षेम के हित राज से
बाहर निकलना चाहिए।

पर चलूँ अब किस जगह
जो यह धरोहर थाम ले,
कीर्ति सांगा की संजोने
में न पल विश्राम ले।

धाय माँ कीरत उदय ले
चल दिये दोनों त्वरित,
पुष्प वर्षा थी कहीं तो
था कहीं पथ मरमरित।

बह त्रिबेणी थी रही
साम्राज्य देवल की डगर,
लाँघती जाती शिखर बन
छोड़ती जाती नगर।

कुंज वन तो थे कहाँ ?
था शूल दल दुख मूल था,
कहीं समतल आपदा में
भाग्य ही प्रतिकूल था।

हिरन शावक अभय आकर
पूछते थे नाम को,
शांति मिलती शर्करा को
गंध मधु आराम को।

क्लान्ति का अनुभव नहीं था
समुद कीरत चल रहा,
प्रौढ़ कीरत को अनूठा
उदय बचपन छल रहा।

उदय कहता रखो साहस
धाय माँ न उदास हो,
माँ तुम्हारी सी जहाँ हो
क्यों न सुर का वास हो।

माँ तुम्हीं से स्वर्ग से भी
यह धरा प्यारी मुझे,
और तीरथ तुल्य पितु, जग
फूल की क्यारी मुझे।

माँ पिता संग क्यों न फिर मैं
अभय हो विचरण करूँ ?
दुख सभी तो ले लिये, अब
धैर्य को धारण करूँ।

सतत सुख का नाम जीवन
है नहीं इस लोक में,
किंतु यह भी तो नहीं
डूबे रहे नित शोक में।

हर्ष और विषाद दोनों
अवतरण के चक्र हैं,
कभी सीधे तो कभी
कृत स्वयं होते वक्र हैं।

कुछ बड़ा हो लूँ, संभल लूँ
कुछ जुटा लूँ शक्ति को,
मैं दिखाऊँगा समर
आह्वान कर, माँ-भक्ति को।

मैं रचूँगा युद्ध ऐसा
शत्रु को ललकार कर,
लौट जायेगा धरा
बनवीर असि के वार पर।

वार सोते सिंह पर
करना न क्षत्रिय-धर्म है,
यही गीता और शास्त्रों
का अलौकिक मर्म है।

जिस तरह चन्दन हृदय
असि घोंप दी बनवीर ने,
उस तरह बनवीर के हित
प्रण किया इस वीर ने।

समय देखेगा सभी प्रिय !
कहा माँ ने बाल हो,
पाँव पलने में भले हैं
बाल दिनमणि लाल हो।

सिंह राव अपार योद्धा
बागची का सुत सबल,
प्राण रक्षा श्रेय चलते
इसलिए उसके महल।

वह शरण देगा हमें
ऐसा अड़िग विश्वास है,
वीर साँगा ने दिया
उसको सदा मधुमास है।

समर का आभार कितना
मैं सहज अनुमानती,
वह न देगा शरण इसका
नहीं कारण जानती।

चल दिये छुपते छुपाते
वीर के दरबार में,
कहा माँ ने जो हुआ
चित्तौड़ के गलियार में।

और बोली है धरोहर
उदय, इसको थाम लो,
नीति बल साहस बटोरो
धीरता से काम लो।

ऋण बहुत है राज का
ले पुत्र उसे उतार लो,
नाव संकट में हमारी
हाथ में पतवार लो।

सुन सभी घटना प्रलय सी
डर गया क्या वीर था ?
धमनियों में था न लोहित
बह रहा बस नीर था।

सुन भयावह वचन उसके
त्वरित ही निर्णय किया,
छोड़ कर उस राज्य को
प्रस्थान माँ ने कर दिया।

पंचम सर्ग

बहने लगी त्रिवेणी पथ पर
जिसका ओर न छोर,
नहीं गगन से, नहीं क्षितिज से
कहीं बँधी थी डोर।

आशा क्या विश्वास गिर गया
माँ थी बहुत उदास,
कीरत के भी हाथ नहीं थी
समाधान की रास।

बड़े थके से, बिखर गये से
चलते जाते पाँव,
कहीं कंटीली डगर धूप की
कहीं रूप के गाँव।

फूलों-फूलों कलियों-कलियों
मधुपों की गुंजार,
तिनके भी तो भिन्न नहीं थे
शूलों के दो चार।

कल कल रव की साँझ समीरण
तम भर लायी रात,
नहीं पूछने वाला कोई
सूने पथ में बात।

हरे भरे नव वल्लरियों पर
गिलहरियों का खेल,
बाल सुलभ मन में भर जाता
असमंजस अनमेल।

इस अज्ञातवास में जीवन
कितना संत्रस्त सशंक,
ये बनचारी करते कितनी
क्रीड़ा केलि अशंक।

पथ पर किंशुक ललित लालिमा
खिल गुलाब के गीत,
हारे थके पथिक को जैसे
दे दे जायें जीत।

पन्ना बोली कीरत भाई
अब चलना किस देश ?
जहाँ पहुँच मिल जाये आश्रय
रक्षा शांति विशेष।

सिंह राव से यहाँ अनेकों
राजाराव कृतघ्न,
जो पर का उपकार न माने
अपने सुख में मग्न।

अपना दुख ऐसा दुख जैसे
राई लगे पहाड़,
अपना हो न बसंत, और की
हरषें देख उजाड़।

बोले कीरत बारी, माता
जितना तुमको ज्ञान,
उतना मैं अबोध हूँ, उतना
ही मुझ में अज्ञान।

आज्ञा दे दो उदयसिंह को
बिठला काँधे शीश
और न कुछ है चाह, चाहता
बस लेना आशीष।

माँ ने कहा चलो चलते हैं
डूँगरपुर की राह,
रावल ऐशवर्ण रहता है
जिसमें भरे उछाह।

वह रख लेगा राजकुँअर, हम
होंगे चिंतामुक्त,
यही विचार कार्य में परिणत
कर होगा उपयुक्त।

इतना सोच समझकर, तीनों
ऐशवर्ण के पास,
गये, और मंतव्य बताया
सफलीभूत न आस।

माँ बोली तुम ऐशवर्ण हो
रहते जिसके राज,
वही माँगने आया चलकर
तुमसे आश्रय आज।

कल बनकर राजा राणा, कर
देगा तुम्हें निहाल,
अवसर है, न हाथ से जाये
अपना लो जयमाल।

शरणागत की रक्षा करना
राजपूत का धर्म,
पुण्य न बढ़कर इससे यह ही
क्षत्रियता का मर्म।

रावल बोला तुम माता हो
अभी न मैं स्वाधीन,
समझ भेद जायेगा सत्वर
है बनवीर प्रवीण।

कैसे क्षमादान दे देगा
लखकर निकट अमित्र ?
कौन जानता यहाँ भाग्य का
कितना खेल विचित्र ?

भुने हुए तीतर उड़ जाते
है भवितव्य अनूप,
छाँव-छाँव पग रखते-रखते
ठग लेती है धूप।

क्रुद्ध सिंहनी बोली कल पर
दो कुछ अपना ध्यान,
कल जो गया और आने
वाला जो नव-निर्माण।

यह भी स्वार्थ, कर्म तुमको तो
बस करना निस्वार्थ,
रावल शांति जहाँ रहती है
निहित और परमार्थ।

कल परमार्थ बनेगा इससे
क्यों लूँ संकट मोल ?
कृत निर्विघ्न चल रहे सारे
जैसे धरा खगोल।

आदर करता राजकुँअर का
नहीं विनय से हीन,
भक्तिभाव उसमें भी जो है
सिंहासन आसीन।

बहुत विवश हूँ क्षमा करो माँ
कोई नहीं उपाय,
असमंजस क्या ? जो निर्बल है
कैसे बने सहाय ?

ऐसा सुनकर माँ पन्ना ने
रावल को धिक्कार,
राह पकड़ ली यथापूर्व ही
बन प्रांतर लाचार।

षष्ठ—सर्ग

कभी-कभी इस जीवन पथ पर
ऐसे भी अवसर आते,
हृदय टूट जाया करता
अपने बेगाने बन जाते।

लोल लहरियों की अठखेली
आते सब साथ निभाने,
उत्ताल तरंगित सिंधु देख
बुनते हैं ताने-बाने।

संसृति की ऐसी विषम सरणि
नव आगंतुक पथ रोके,
अनुकूल पवन, प्रतिकूल पवन
झंझा मारुत के झोंके।

जो स्वप्न रचाता है मानव
उनमें जो अगन छुपी है,
अनुमान नहीं होने पाता
ऐसी कुछ चुभन छुपी है।

आ आकर भरमाया करते
पीछे के गीत रुपहले,
माटी बनकर भरमा जाते
कंचन के भुवन सुनहले।

ऐसी कुछ झड़ी लगी रहती
संतोष नहीं मिल पाता,
कामना सुखों की छलती है
चुपके से दुख आ जाता।

आदमी बनाता रहने को
पर महल ढहाता कोई,
मृगजल की फुलवारी मिलती
सावन दे जाता कोई।

उत्थान पतन की बेला में
चलते जाते डगमग पग,
माँ को, कीरत को, उदयसिंह
को, लगता यह असार जग।

कहकर असार जग को छोड़े
यह तो कोरी कायरता,
शोणित में ज्वाला भर जाती
देखी है वह बर्बरता।

पल में हताश, पल में साहस
आ जाती पाँवों में गति,
तीनों ही निकल चले वन को
कुछ काम नहीं करती मति।

माँ कैसी दुनियादारी है
द्रुत उदयसिंह यों बोला,
धरती से तो भर गया हृदय
माँ ला दो उड़नखटोला।

जिस पर बैठ चलें हम तीनों
अंबर-उर चीर कहीं पर,
कुछ तो सोचें, कुछ तो देखें
होकर गंभीर कहीं पर।

होंगे भी तो भुवन और भी
इस अंतरिक्ष के आगे,
होंगे जहाँ और भी कोई
हम जैसे निपट अभागे।

उठता जाता भावों का नद
तीनों ही डूबे-डूबे,
व्यग्र नहीं थे किंतु तनिक भी
माँ ममता के मनसूबे।

माँ बोली ओ कीरत भाई
मेरे सुत छौने-छौने,
अभी ज्योति की रेख और है
नहीं व्यग्र दूँगी होने।

युग का अनुभव बतलाता है
होते जैन कृतघ्न नहीं,
त्याग तपस्या के वे प्रहरी
आशा करते भग्न नहीं।

ये उपकारी जनम जनम के
कभी नहीं झुकना सीखा,
आगे पाँव बढ़ाकर पथ में
कभी नहीं रुकना सीखा।

रखते स्नेह, दीप की बाती
अम्बर से प्रकाश बरसे,
कष्ट स्वयं सहने के आदी
जिससे मनुज मनुज हरषे।

आशाशाह एक जैनी है
राजपूत के चोले में,
चलो देख लें कितना तप है
कितना व्रत उस झोले में।

इतना कहकर पन्ना माता
कमलमेर के दुर्ग गई,
जिसके धर्म पूत शिखरों में
लगी हुई थी आस नई।

मन्दिर था, प्रासाद निकट ही
आलय अर्चन वन्दन का,
जहाँ प्रार्थना स्वर उद्घोषित
प्रभु पावन अभिनन्दन का।

विनती के कुछ बोल सुने तो
मन को मिला सहारा,
जैसे नाव डूबती को मिल
जाये कहीं किनारा।

संकट के क्षण किये प्रदर्शित
जा विश्राम भवन में,
सब कुछ ही कह दिया मुक्त हो
जो बीता जीवन में।

एक बार तो काँप गया था
राजपूत बलधारी,
गत आगत की चिंताओं में
ज्यों उसकी मति हारी।

आशंकाओं का उबाल था
मस्तक घूम रहा था,
दीपक ज्योति न, दिशा-दिशा में
बस उड़ धूम्र रहा था।

प्राण पखेरू ढूँढ़ रहे थे
जैसे नीड़ कहीं पर,
घिर-घिर आती थी चिंता रेखा
मानस भग्न पटल पर।

क्रोधित दृग बनवीर नृपति के
जिनमें रक्तिम डोरे,
प्राण सिंधु को शिरा-शिरा को
बार-बार झकझोरे।

टक्कर लेना सरल नहीं था
रख विरोध चिनगारी,
स्वीकृति अस्वीकृति के लगते
दोनों पलड़े भारी।

शरणागत की रक्षा करना
जहाँ सुकृत की गाथा,
वहाँ प्राण संकट में देना
ठनक गया था माथा।

पन्ना माँ से बोला, बोलो
तुम ही, क्या उत्तर दूँ ?
यह अपूर्व थाती स्वीकारूँ
या अस्वीकृत कर दूँ ?

पन्ना बोली सहज भाव से
क्यों भर लाये शंका ?
तुम पवित्र क्यों भस्म करेगा
रिपु सोने की लंका ?

निर्भय होकर राजनीति से
बालक नृपति बचाओ,
युद्ध हुआ तो राजपूत प्रण
उसका मान बढ़ाओ।

इतना सुनने पर भी मन का
पापी भय न हुआ कम,
अनिमन्त्रित विद्रोह कंपा
जाता था अन्तर थम-थम।

यह सब लखकर और समझकर
आशा—माँ गुर्राई,
कायरता सुत ! मिली कहाँ से
क्या यह ही तरुणाई ?

व्रत लेकर के वीर खेलते
जीवन एक द्यूत का,
गत आगत की चिंता करना
काम न राजपूत का।

किस चिंता में उलझ गये हो ?
नृप है शरण तुम्हारी,
कैसा है असमंजस बोलो
काहे को मति हारी ?

मेरी कोख लजाओगे क्या ?
क्या इतिहास कहेगा ?
यह कृत, क्षत्रिय-असरल-बाना
कायर बन न सहेगा।

राजनीति बतलाती है क्या ?
जीना धर्म विरत हो,
मैं कहती हूँ करो कार्य वह
जो शिव सुंदर सत हो।

महाराज आये हैं द्वारे
करो न आनाकानी,
इनके हित अर्पित यौवन की
गौरवपूर्ण कहानी।

अंक लगा करके बालक को
छाती से न हटाना,
कहीं प्रजाहित, नृप के हित भी
है कर्त्तव्य निभाना।

इतना सुन छट गये तिमिर-घन
नीले आसमान से,
मेघ उमड़ने लगे शौर्य के
अलसाये विहान से।

प्रिय माता को संबोधित कर
आशाशाह उठा कह,
बना महीध्र समान भार जो
नहीं रहा अब दुर्वह।

माँ आशीष तुम्हारा है तो
काँटें फूल लगेंगे,
हँस-हँस कर टकरा जाऊँगा
पर्वत धूल लगेंगे।

क्या बनवीर शत्रु बन आगे
वृत्रासुर भी आये,
इंद्र सदृश दधीची के आगे
शाह न कर फैलाये।

अस्थि वज्र से भी महान माँ।
उर उत्साह अगम है,
और लोचनों में अनंत से
धैर्य न तिल भी कम है।

राजनीति के तंत्र मंत्र सब
गुरु मुख से सीखे हैं,
नहीं अधूरे जब भी दीखे
सपने सच दीखे हैं।

कार्य देश का तो यह तन भी
और कहाँ से आया ?
जन्म-मरण की परिभाषा में
है अमरत्व समाया।

नहीं भेजता है कोई भी
अगर भेजता होता,
चंदन पर जब टूटा था रिपु
क्या वह रहता सोता ?

आता स्वयं, स्वयं लेकर के
गिनती की कुछ साँसें,
याद न रहता ले जाता है
अगिन अर्घ उच्छवासें।

पन्ना माँ तुम चन्दन की माँ
ही न, विश्व की माँ हो,
अंबर की धृति, कांति तपन की
भू की कीर्ति महा हो।

चन्दन नहीं मरा है उसका
यह बलिदान अमर है,
माँ तेरा यह प्यार, प्यार का
यह संधान-अमर है।

कृत्य धवल, शोणित उज्ज्वलता
इसे त्याग कहते हैं,
कर्त्तव्यों के आवाहन को
तप-पराग कहते हैं।

नस-नस में है दृढ़ता, लोहित
में देवत्व छुपा है,
किसे नहीं है ज्ञात मातु में
अतुल ममत्व छुपा है।

गढ़ चित्तौड़ यज्ञ में चन्दन
की आहुति दे डाली,
नहीं भूल पायेगा भूले
कभी समय का माली।

उदयसिंह को दे दो मुझको
किंकर बन पालूँगा
हृदय छुपा लूँगा मैं
इसमें प्राणों को ढालूँगा।

चाहे जो हो धर्म, कर्म से
क्षत्रिय कहलाता हूँ
रूढ़िवाद से परंपराओं
से नित टकराता हूँ।

छटे निराशा के घन नभ से
दूर हुआ अंधियाला,
पन्ना की उर-निशि में जागा
आशा रवि उजियाला।

जिसे न सुलझा पाई अब तक
सरल हुई वह उलझन,
गिरते को बल और डूबते
को जलधारा में तृण।

कुछ खो, पाये को रक्षित कर
नव आह्लाद मिला था
मन्दिर में ज्यों भक्ति निष्ठ को
पुण्य प्रसाद मिला था।

कुछ दिन ही बीते होंगे यों
जीवन यान चलाते,
कहाँ विलंब लगा कष्टों को
नौका को उलझाते।

कानों-कानों में सुर-सुर की
आहट आँखों-आँखों,
तम भ्रम संशय फैल गया था
उलझ रहे थे लाखों।

कानाफूसी बढ़ती जाती
कौन नगर में आये ?
ये जो राजकुँअर से लगते
आखिर किसके जाये ?

और साथ में एक नागरी
लगती बड़ी सयानी,
बात नहीं जानी जाती
जाती न जाति पहिचानी।

सम्बन्धी भी नहीं शाह के
चलन नहीं सम लगता,
एक डाल के ही उपजे, पर
रंग रूप कम लगता।

भनक पड़ी माँ के कानों में
चौंक उठी घबराई,
भेद न खुल जाये, पुरवासी
करें न कहीं हँसाई।

त्वरित मंत्रणा की नृप सुत से
कुछ करने को तत्पर,
जितना शीघ्र छोड़ दे नगरी
उतना ही श्रेयस्कर।

एक रत्न आहुति में डाला
एक छोड़ कर चली दी,
बढ़ी चली जाती थी पन्ना
वन में जल्दी-जल्दी।

नहीं एक की दो पुत्रों की
स्मृति माँ के अंतर में,
फैल रही यश गाथा धरती
अंतरिक्ष अम्बर में।

भारत बलिदानों का देश
नित नव निर्माणों का देश।

नहीं छद्म छल की है धरती,
पन्ना माँ सुत अर्पण करती,
कर्त्तव्यों की भव्य पताका
पावन प्रतिदानों का देश।

अमिट आन, अंगार चूम ले,
मधु-ऋतु तज, पतझार चूम ले,
परहित जो सुख-छाँव लुटा दे
अल्हड़ अ़रमानों का देश।

निर्णय में न विलम्ब कहीं है,
जय-गाथा परिपूर्ण मही है,
राष्ट्र-प्रेम की दीप शिखा पर
उन्मद परवानों का देश।

वेली, जिला

जनीति शास्त्र,
डी., डी. लिट्

(*बालकाव्य*),
दे दिया चलते
त्र (*पुरस्कृत*),
गुरु गो

द्यापी०,
द्वारा सरोपे भेंट
या हायर सैकेंड्री
पुर
पुरानी मंडी,
: 740270

डॉ. सुभद्रा खुराना

जन्म : 7 अगस्त, 1946, ग्राम हवेली, जिला मिंटगुमरी (पाकिस्तान) में

शिक्षा : एम. ए. (हिंदी, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, इतिहास), बी.टी., पी-एच.डी., डी. लिट् (मानद)

प्रकाशित कृतियां :

फिर से सूरज निकल गया है (*बालकाव्य*), अक्षर अक्षर नाम तुम्हारा, दर्द दे दिया चलते चलते, मैं तेरी वंशी हूं माधव (*पुरस्कृत*), प्यासा बादल नदी किनारे, गुरु गोविन्दम् (*महाकाव्य*) (*पुरस्कृत*), दधीचि (*खंड-काव्य*) (*पंजाब सरकार द्वारा प्रकाशित*), पन्ना (*खंड-काव्य*)

हिंदुस्तान, पंजाब केसरी, पंजाब सौरभ, जागृति, पालिका समाचार, आजकल, वीर अर्जुन, नवभारत, विश्वमानव, मंगलदीप आदि पत्रों में साक्षात्कार तथा अनेक गीत प्रकाशित

सम्मानोपाधि : साहित्य-मार्त्तण्ड, काव्य शिरोमणि, नारी गौरव, प्रमदा रत्न, काव्य-प्रवीण, मैडिल आफ मैरिट (*उ.प्र. सरकार*), साहित्यालंकार, हिंदी विभूषण, भारत भाषा विभूषण, राष्ट्रीय रिसर्च फैलोशिप-वि.हि. विद्यापीठ, बिहार, गुरु सिंह सभा आदि गुरुद्वारों द्वारा सरोपे भेंट

संप्रति : प्रधानाचार्या, जे.डी. आर्य कन्या हायर सैकेंड्री स्कूल, पुरानी मंडी, सहारनपुर

संपर्क : 'सुभद्रालय' दधीचि लेन, पुरानी मंडी, सहारनपुर-247001 / फोन : 740270